जैन भारती

फरवरी 2013 • वर्ष 61 • अंक 2 • वार्षिक रु. 200.00

With best compliments from :

SMT MACHINES

INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting & Y Table, Snap Shears etc.

SMT MACHINES (INDIA) LIMITED

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com

Fine Strokes (09866291098)

जैन भारती

वर्ष 61 • फरवरी, 2013 • अंक 2

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

1.	सम्पादकीय		7
2.	संगठन का कल्पवृक्ष	—आचार्य महाप्रज्ञ	9
3.	संघनिष्ठा का विकास	—आचार्य महाश्रमण	13
4.	वर्द्धमान बनने की तैयारी	—साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	16
5.	तेरापंथ का प्राण केन्द्र-मर्यादा महोत्सव	—मुनि सुखलाल	19
6.	आगम के आलोक में आचार्य भिक्षु	—साध्वी निर्वाणश्री	21
7.	तेरापंथ की आधारशिला : अनुशासन का धर्मचक्र	—पदमचन्द पटावरी	23
8.	विकास के आधार स्तंभ—मर्यादा और अनुशासन	—डॉ. साध्वी कुन्दन रेखा	25
9.	आस्था हो तो भिक्षु जैसी	—साध्वी राजीमती	27
10.	सर्वे संतु निरामया	—ललित गर्ग	30
11.	मर्यादा का सुरक्षा कवच	—प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी	34
12.	जीवन का मौलिक आधार मर्यादा	—डॉ. हीरालाल छाजेड़	36
13.	संगठन का मौलिक आधार—मर्यादा	—साध्वीश्री कनकरेखा	38
14.	आचार्य भिक्षु एवं काण्ट का निरपेक्ष आदेश....	—डॉ. समणी चैत्यप्रज्ञा	41
15.	श्रावक अपने आप से पूछे	—साध्वी सहजप्रभा	44
16.	जीवन और काल की सार्थकता	—मुनि मोहजीत कुमार	47
17.	समय को पहचानो	—समणी ज्योतिप्रज्ञा	48
18.	अनेकान्त प्रिय आचार्य श्री भिक्षु	—मुनि मदनकुमार	50
19.	आत्मीयता की झील : अनुग्रह के फूल	—साध्वी शुभप्रभा	54
20.	तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा		57

•
आवरण
गौरीशंकर

संपादकीय सम्पर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306, मो. 09413889617
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए

मर्यादा हमारा जीवन है

- मर्यादा मनुष्य को अभाव में धैर्य प्रदान करती है और विलास में कर्तव्य का विवेक देती है।
- श्वास–प्रश्वास न हो और चैतन्य हो, यह जैसे असंभव है वैसे ही विश्वास न हो और मर्यादा हो, यह भी संभव नहीं।
- अपने आपको धोखा देकर दूसरों के प्रति वंचना का व्यवहार करने में मर्यादाएं टूट जाती हैं।
- मर्यादा आत्मसंयम का वह द्वीप है, जो आकांक्षाओं के सागर में बहते हुए मनुष्य के लिए आश्वासन है।
- उद्देश्य का निर्धारण और उस दिशा में आगे बढ़ने का मजबूत इरादा—यह भी एक मर्यादा है। इस मर्यादा में बंधकर ही मनुष्य सफलता के शिखर पर आरोहण करता है।
- वही मर्यादा कारगर हो सकती है, जिसका प्रामाणिकता के साथ पालन हो, अन्यथा मर्यादा अकिंचित्कर है।
- मर्यादा वह सीमारेखा है, जो व्यक्ति को अवांछनीय पथ पर आने से रोकती है।
- मर्यादा और अनुशासन को बनाने में समय लगता है, किन्तु बदलने में समय नहीं लगता।
- अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता के तीरों से बचने के लिए मर्यादा का सुरक्षा कवच आवश्यक है।
- दण्ड, भय अथवा किसी लोभ के वशीभूत होकर मर्यादा का पालन करना मर्यादित जीवन का चिह्न नहीं है।
- अगर हम मर्यादित हैं तो अणुअस्त्र हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकता। यदि मर्यादाहीन हैं तो अणुअस्त्रों के अभाव में भी हम अपना बहुत नुकसान कर सकते हैं।
- जिस काल और क्षेत्र में जनजीवन सहज मर्यादित होता है, वहां मर्यादाएं कृतकृत्य हो जाती हैं।

हे प्रभो! यह तेरापंथ

—आचार्यश्री तुलसी

सब काम करने से नहीं होते। कुछ काम प्रयत्न करने पर भी नहीं होते और कुछ अपने आप हो जाते हैं। वर्षा बरसती है। कुछ बीज बिना बोए अपने आप उग जाते हैं, धीरे-धीरे बढ़ते हुए वे वृक्ष बन जाते हैं और अपनी जड़ें बहुत गहरे तक ले जाते हैं। तेरापंथ की स्थापना भी किसी ने की नहीं, अपने आप हो गई।

आचार्य भिक्षु अपने युग के विलक्षण महापुरुष थे। तत्कालीन साधु-समुदायों में पनपने वाली आचार-विचार की विसंगति ने उनको उद्वेलित कर दिया। उनकी चेतना के द्वार पर दस्तक हुई, जिसे वे अनसुना नहीं कर सके। उनकी प्रज्ञा ने उस दस्तक का विश्लेषण किया। वे अन्तर्द्वन्द्व से घिर गए। उन्होंने समन्वय के मार्ग पर कदम बढ़ाए, पर उन्हें पीछे हटना पड़ा। सिद्धान्त के साथ समझौता करना उनकी नीति नहीं थी। अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के आधार पर उन्होंने धर्मक्रान्ति का आह्वान किया। सुविधा और प्रतिष्ठा का पथ छोड़कर मुसीबतों भरे रास्ते पर चलना स्वीकार किया। उनका चिन्तन यह था कि कोई व्यक्ति या समूह तत्त्व को नहीं समझता है तो उस पर आरोपित नहीं करना चाहिए। आरोपण करने की अपेक्षा अपने आपको वहां से हटा लेना ही अधिक उचित है।

आचार्य भिक्षु का लक्ष्य किसी नए पंथ (सम्प्रदाय) का प्रवर्तन करना नहीं था। किन्तु वे चले और पंथ बन गया। जन पंथ बन गया तो धीरे-धीरे उसमें दूसरे लोग भी सम्मिलित होने लगे। प्रथम पारी में उस पंथ पर चलने वाले साधुओं की संख्या तेरह थी। संयोग से जोधपुर के तेरह श्रावक आचार्य भिक्षु द्वारा निरूपित पद्धति से धर्मोपासना में संलग्न हुए। तेरह-तेरह का योग मिला और तेरापंथ नामकरण हो गया, पर आचार्य भिक्षु ने अपनी दूरगामी सूझ-बूझ का उपयोग किया और तेरापंथ नाम की अपने ढंग से व्याख्या की। उनकी पैनी दृष्टि की फलश्रुति है—हे प्रभो! यह तेरा पंथ। प्रभु के पंथ पर चलने का संकल्प लेकर उन्होंने अरावली की घाटियों पर आरोहण किया। चलते-चलते वे केलवा पहुंचे और शास्त्रानुमोदित नई दीक्षा स्वीकार कर आत्मतुष्टि का अनुभव करने लगे। उसी दिन तेरापंथ की आधारशिला प्रतिष्ठित हो गई। आज आचार्य भिक्षु को याद करने का मतलब है उस महापुरुष के विचारों, सिद्धान्तों और आचरणों को उजागर करना। इस माध्यम से उनकी वैचारिक दृढ़ता, सैद्धान्तिक समझ और आचारगत सजगता का अपने जीवन में अवतरण करना ही सही अर्थ में उनका स्मरण है। आचार्य भिक्षु का तेरापंथ धर्मसंघ अपनी मौलिकताओं को पूर्ण-रूप से सुरक्षित रखता हुआ युगीन परिवेश को स्वीकार कर आगे बढ़ रहा है। इस युग की भाषा में उसकी यह पहचान हो सकती है—

- आचार और विचार की समन्विति का नाम है तेरापंथ।
- नवीनता और प्राचीनता के सहावस्थान का नाम है तेरापंथ।
- अनुशासन और आचार को सर्वोपरि मानने का नाम है तेरापंथ।
- आचार्य और संघ के पारस्परिक अनुबन्ध का नाम है तेरापंथ।
- साधना, सेवा और श्रम की त्रिवेणी का नाम है तेरापंथ।
- अहंकार और ममकार के विसर्जन का नाम है तेरापंथ।
- व्यक्तित्व-विकास का प्रशिक्षण-केन्द्र है तेरापंथ।
- विज्ञान और धर्म के सामंजस्य का नाम है तेरापंथ।

संविधान संगठन की आत्मा है। आज्ञा, अनुशासन, मर्यादा और व्यवस्था से जुड़ा तेरापंथ धर्मसंघ सदियों बाद भी आज अपने विधान के प्रति निष्ठा के साथ समर्पित है, क्योंकि यहां एक आचार्य और एक आचार की परम्परा है।

आचार्य भिक्षु दूरदर्शी, समयज्ञ एवं कुशल व्यवस्थापक थे। उन्हें संख्या की अपेक्षा गुणात्मकता प्रिय थी, इसलिए अपने धर्मसंघ की सुदृढ़ता के लिए उन्होंने व्यवस्था के बिखराव और आचार की शिथिलताओं को मौलिक मर्यादाओं के मंत्र से कील दिया। संघीय चेतना के विकास को बल मिला श्रीमज्जयाचार्य द्वारा स्थापित मर्यादा महोत्सव के आयोजन से। संविधान में वर्णित वे मर्यादाएं हमारे लिए प्रणम्य हैं, आचरणीय हैं–

तेरापंथ की मौलिक मर्यादाएं

1. सर्व साधु-साध्वियां एक आचार्य की आज्ञा में रहें।
2. विहार-चातुर्मास आचार्य की आज्ञा से करें।
3. अपने शिष्य न बनाएं।
4. आचार्य योग्य व्यक्ति को ही दीक्षित करें। दीक्षित करने पर कोई अयोग्य निकले तो उसे गण से अलग कर दें।
5. आचार्य अपने गुरु भाई या शिष्य को उत्तराधिकारी चुने तो सब साधु-साध्वियां सहर्ष स्वीकार करें।
6. श्रद्धा या आचार के बोल को लेकर गण में भेद न डालें। दलबन्दी न करें। आचार्य व बहुश्रुत साधु कहे वह मान लें अथवा केवलीगम्य कर दें।
7. गण में शुद्ध साधुपन सरधे वह गण में रहे किन्तु छल-कपटपूर्वक गण में न रहे। जिसका मन साक्षी दे, भली भांति साधुपन पलता जाने, गण में तथा अपने आप में साधुपन माने तो गण में रहे किन्तु वंचना-पूर्वक गण में न रहे।
8. गण में किसी साधु-साध्वी के प्रति अनास्था उपजे, शंका उपजे वैसी बात न करें।
9. किसी साधु-साध्वी में दोष जान पड़े तो उसे आचार्य को जता दें, किन्तु उसका प्रचार न करें। दोषों को चुन-चुन कर इकट्ठा न करें।
10. किसी साधु-साध्वी को जाति आदि को लेकर ओछी जुबान न बोलें।
11. गण के पुस्तक-पन्नें आदि पर अपना अधिकार न करें।
12. गण से बहिष्कृत या बहिर्भूत व्यक्ति से संस्तव न करें।
13. पद के लिए उम्मीदवार न बनें।

संघ धूप भी है, छांव भी है

मर्यादा और अनुशासन से अनुबन्धित तेरापंथ धर्मसंघ गुरु-शिष्य के पवित्र रिश्ते का व्याख्या सूत्र है। यहां गुरु की शरण में जाने का मतलब है संन्यस्त होना। संन्यस्त यानी इन्द्रियों की आसक्ति, मन की चंचलता और कषायों की उत्तप्तता का उपशमित होना। ऐसा शिष्य सर्वस्व समर्पण कर गुरु के आभावलय में प्रवेश कर निश्चिन्त हो जाता है और गुरु भी शिष्य के विकास की अथ से इति तक की सारी जिम्मेदारियां स्वयं के अधिकार में ले लेता है। ऐसे रिश्ते में विकास की दिशाएं शिखर छूने लगती हैं, क्योंकि तेरापंथ का अनुशासन, विनय, कला, समर्पण और संविधान शिष्य के लिए आगम का प्रवचन, गीता का बोधपाठ और उपनिषद् की ऋचाएं जैसा बन जाता है।

ऐसा धर्मसंघ और सन्तता के शिखर गुरु के नेतृत्व में हम अपना विश्लेषण करें कि इस संघ की विशेषताएं हमारे लिए कहां, कैसे रोशनी के रास्ते खोलती हैं।

संघ में अनुशासन और सहिष्णुता प्रगति के मुख्य दो आयाम हैं। जहां संघ में अनुशासन है वहां सहिष्णुता भी है, क्योंकि बिना सहे गुरु का विश्वास नहीं मिलता और बिना विश्वास व्यक्तित्व का विकास संभव नहीं होता। इसलिए तेरापंथ धर्मसंघ में श्रद्धा और समर्पण दोनों का मूल्य है।

संघ में हर क्षण जागरूक पहरेदारी होती है। गलत और सही का निर्णय होता है। यहां आलोचना को प्रश्रय नहीं मिलता बल्कि समीक्षा हर बात की होती है। जहां जिसमें अच्छाइयां होती हैं उनका सही समय पर गुरु सही मूल्यांकन करते हैं और जहां खामियां नजर आती हैं तो वहां अंगुली निर्देश भी होता है, क्योंकि यहां गलतियां जन्म सकती हैं, पर जी नहीं सकती।

आज के युग में आपसी रिश्तों में आपसी संवाद इतने कमजोर पड़ गए हैं कि बहस चालू होते ही जहां मन के प्रतिकूल बात सामने आई कि लोगों के हाथ में बन्दूक तक तन जाती है। आज कौन किसको सहता है इस सन्दर्भ में तेरापंथ प्रेरणा की मिसाल है। यहां सब-सबको सहते हैं। और सहना भी उनके लिए मजबूरी नहीं, उनकी साधना है।

तेरापंथ में परिवर्तन वैचारिक मतभेदों से नहीं जनमता। यहां युगीन सन्दर्भों की मीमांसा होती है। पुराने को सुरक्षित रखते हुए नए को जोड़ते हैं जिसमें किसी का आग्रह, उपेक्षा, लापरवाही नहीं होती बल्कि सबकी सहज स्वीकृति होती है, क्योंकि इस स्वीकृति में सबका अभ्युदय दिखता है। यहां जो भी व्यवस्था बदलती है वो अपेक्षा और आवश्यकता के कारण बदलती है न कि स्वतंत्रता और महत्त्वाकांक्षा के कारण।

समाज और देश के परिप्रेक्ष्य में देखें तो राजनीति जड़ों तक परिवर्तन मांगती है। क्योंकि बुराइयों की जड़ें गहराई तक फैली हैं, पर इस परिवर्तन में चाहिए पुराने मूल्यों के प्रति सम्मान और नए के प्रति उपादेय दृष्टिकोण। जबकि लोगों की नजर में 'पुराने के प्रति आग्रह है और नए के प्रति बेबुनियादी आकर्षण।'

आज व्यक्ति ऊंचा पद, ऊंची शान-शौकत चाहता है। सबको पछाड़ कर स्वयं सबकुछ हस्तगत करना चाहता है और इस मान-प्रतिष्ठा के लिए वो क्या कुछ गलत नहीं करता। पैसे की ताकत पर मानवीयता तक को खरीद लेता है पर तेरापंथ में ऐसा नहीं होता। यहां एक आचार्य, एक अनुशासना का बीज मंत्र इस प्रतिष्ठा का सुरक्षा कवच बना हुआ है। यहां पद की आकांक्षा नहीं जागती, क्योंकि एक गुरु की अनुशासना में शिष्य जीवन की सम्पूर्ण चिन्ताओं पर पूर्ण विराम लगा देता है।

आज के युग में एक आचार्य की अनुशासना में बुद्धिजीवियों का रहना एक अद्‌भुत आश्चर्य है पर इस दिशा में यह सच है कि लाखों श्रावक-श्राविकाएं और सैकड़ों साधु-साध्वियां एक अनुशासना में अपनी सुख-शांति और समाधि ढूंढ़ते हैं, क्योंकि एक ओर महत्त्वाकांक्षाओं की बागडोर अनुशास्ता के हाथ में है, तो दूसरी ओर हर क्रिया पर गुरु की आंख टिकी है, जो संघ की मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा, और साधना से जुड़ी है। यह भी सच है कि जहां भी कोई चूक हुई, गुरु कल्याणी करुणा के साथ उसे संभालते हैं, परिष्कार का मौका देते हैं। यह पवित्र सन्तता का उपहार हमारे जीवन की आश्वस्ति है। गुरु का अनुग्रह और मर्यादाओं से अनुप्राणित संघ का मिलना सचमुच! हमारी पुण्याई का फल है।

हम श्रद्धाप्रणत हैं संघ और संघपति के प्रति, जिन्होंने हममें बोधि जगाई है। सन्तुलित जीवन शैली में जीना सिखाया है। आचार, विचार, व्यवहार और संस्कारों के परिष्कार की प्रयोगभूमि दी है। युगीन समस्याओं के बीच तनावमुक्त जीने का प्रशिक्षण दिया है। यह हमारे विकास की कर्मभूमि है। संस्कारों की जन्म भूमि हैं, बदलाव की निर्माणभूमि है। यहां सबके योगक्षेम की परम्परा जीवित है।

ऐसे संघ में जन्म लेना, ऐसे महातपस्वी गुरु का सान्निध्य पाना, इसी जमीं पर अपनी पहचान बनाना और इसी जमीं की जड़ों में खाद बनकर मिट जाना क्या पुनर्जन्म की तैयारी नहीं है?

इस संघ ने हमें जीवन दर्शन दिया है, इसलिए हमारा भी पुनीत दायित्व है कि हम भी संघ के नाम कुछ ऐसा करें जिसके होने पर हमारे होने की सार्थकता सामने आए।

आचार्य तुलसी की जन्म शताब्दी का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हमारे सामने है। अब हमें जागना है। करवट लेकर फिर सो जाने का बहाना न बनाएं। युग का आह्वान है कि अगुआ बनकर बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाएं। प्रयास कहीं से भी क्यों न शुरू हो पर शुरुआत अब हमारी नियति अवश्य बने। क्योंकि आज नहीं, तो फिर कभी नहीं हम कुछ कर पाएंगे।

—शान्ता जैन

संगठन का कल्पवृक्ष

आचार्य महाप्रज्ञ

* *

तेरापंथ धर्मसंघ एक प्राणवान धर्मसंघ है। इसकी प्राणवत्ता का हेतु है सुदृढ़ संगठन। आचार्य भिक्षु ने संगठन को मजबूत करने का तीव्र प्रयत्न किया। उन्होंने मर्यादाओं का निर्माण कर संगठन के कल्पतरु को हरा–भरा कर दिया। मेरी एक पुस्तक है भिक्षु गीता। मैंने उसमें पंचामृत की चर्चा की है। पांच अमृत का सिंचन किया जाए तो संगठन का कल्पवृक्ष लहलहा सकता है।

आत्मोत्सर्गस्तपस्या च सहयोगः परस्परम्।
वात्सल्यस्य महत्त्वं च सम्यग् ग्रहणशीलता।।
पञ्चामृतमिदं पुण्यं अभिषिक्तो निरन्तरम्।
संघकल्पतरुर्येन पुष्पितः फलितो भवेत्।।

संगठन के कल्पतरु को सिञ्चन करने के लिए **पहला अमृत है आत्मोत्सर्ग।** संगठन के प्रत्येक सदस्य में बलिदान करने की क्षमता होनी चाहिए। समय पर उसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। अपना बलिदान दें, आत्मोत्सर्ग करें। प्रायः व्यक्ति दूसरे के उत्सर्ग की बात करता है, स्वयं पीछे हट जाता है। इस संदर्भ में एक कहानी बहुत मार्मिक है। एक बार अकस्मात् युद्ध की रणभेरी बज गई। ठाकुर साहब ने सब सैनिकों में जोश भरते हुए कहा–'बढ़ो, बढ़ो, आगे बढ़ो। खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? यह मौका है मर मिटने का, प्राणों की आहुति देने का। हमें विजयश्री का वरण करना है। हमारा आदर्श है–'कार्यं वा साधयिष्यामि, देहं वा पातयिष्यामि। हमें आगे बढ़ना है। किसी भी कीमत पर पीछे नहीं हटना है।' जोशपूर्ण शब्दों से ठाकुर साहब योद्धाओं का हौसला बुलन्द करते हुए सेना का नेतृत्व कर रहे थे। जैसे ही युद्ध शुरू हुआ ठाकुर साहब की जिजीविषा प्रबल हो गई। खिसकते-खिसकते वे गांव तक पहुंच गए। लोगों ने ठाकुर साहब से कहा–आप तो हमारा उत्साह बढ़ा रहे थे और अब आप ही पीछे हट रहे हो। ठाकुर साहब ने कहा–'अरे! तुम जानते नहीं हो। पीछे हटते-हटते ही तो ये बाल सफेद हुए हैं।' ऐसे लोगों से संगठन को बल नहीं मिल सकता।

जहां किसी भी संघ या संस्थान का प्रत्येक सदस्य आत्मोत्सर्ग करने के लिए, अपना बलिदान देने के लिए तैयार रहता है, वहां संघ अथवा संगठन शक्तिशाली होता है। आचार्य भिक्षु ने साधु-साध्वियों को इन संस्कारों से अनुप्राणित किया। इसीलिए वे समय आने पर आत्मोत्सर्ग करने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करते हैं।

जयाचार्य के समय की घटना है। उस समय चित्तौड़ में तेरापंथ की श्रद्धा के प्रमुख परिवार दो ही थे–ताराचंदजी ढीलीवाल का और कानमलजी पारख का। अन्य जैन सम्प्रदायों के घर थे, किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण वहां गोचरी करने में कठिनाई थी। इधर ढीलीवालजी की श्रद्धा भक्ति देखकर जयाचार्य ने चित्तौड़ में चातुर्मास कराने का मानस बना लिया।

जयाचार्य चित्तौड़ को चातुर्मास्य देना चाहते थे और वे वहां की परिस्थितियों से भी परिचित थे। आपने साधु-साध्वियों से पूछा–'वहां चौमासा कौन कर सकता है?' इस प्रश्न पर सब मौन रहे। जब जयाचार्य ने यही प्रश्न दूसरी बार दोहराया तो साध्वी दीपांजी खड़ी होकर बोली–'आप मुझ पर अनुग्रह करें तो मैं वहां चातुर्मास्य कर सकती हूं।'

साध्वी दीपांजी के सिंघाड़े में उस समय सत्तरह साध्वियां थीं। जयाचार्य ने कहा–'दीपांजी! तुम्हारे सिंघाड़े में सत्तरह साध्वियां हैं। वहां आहार-पानी की व्यवस्था कैसे हो सकेगी?' साध्वी दीपांजी ने निवेदन किया–'गुरुदेव! आपका पहला संकेत होते ही मैंने साध्वियों से बात कर ली। चार साध्वियां चातुर्मासिक तप करने के लिए तैयार हैं। चार साध्वियां दो-दो महीने की तपस्याएं करने के लिए कटिबद्ध हैं। चार साध्वियों ने एकान्तर तप के लिए स्वीकृति दी है। दो साध्वियां एक दिन और दो साध्वियां एक दिन उपवास कर लेंगी। शेष साध्वियों का चातुर्मास हमीरगढ़ हो सकता है। इस क्रम से भाद्रपद मास तक प्रतिदिन आहार करने वाली दो साध्वियां रहेंगी। तब तक हमारा सम्पर्क बढ़ जाएगा और वर्षा कम होने से आसपास के गांवों का रास्ता भी खुल जाएगा। फिर क्या कठिनाई होगी?'

साध्वी दीपांजी के साहस, सूझ-बूझ, संघनिष्ठा और गुरु दृष्टि के प्रति सजगता ने जयाचार्य को विशेष रूप से प्रभावित किया। उन्होंने वि. सं. 1910 में साध्वी दीपांजी को चित्तौड़ चातुर्मास्य करने की स्वीकृति दे दी। साध्वी दीपांजी ने जेतांजी आदि 6 साध्वियों को हमीरगढ़ भेज दिया और स्वयं ने 11 साध्वियों से वह चातुर्मास्य चित्तौड़ में संपन्न कर संघ के स्वर्णिम इतिहास में अपना नाम अंकित कर लिया। जहां ऐसी आत्मोत्सर्ग की भावना होती है, वहां संगठन का कल्पवृक्ष फलता–फूलता है।

संगठन के कल्पतरु को हरा–भरा करने वाला **दूसरा अमृत तत्त्व है तपस्या, तप की क्षमता, कष्ट सहन करने की क्षमता।** जिस संगठन के सदस्यों में सहन करने का मादा होता है, वह संगठन प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। तेरापंथ धर्मसंघ में अनेक साधु-साध्वियों ने सहिष्णुता का बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत किया। इस विषय में मुनि पृथ्वीराजजी के जीवन का प्रसंग उल्लेखनीय है। परमपूज्य डालगणी का स्वर्गवास हुआ, उस समय उनका चातुर्मास्य देवगढ़ में था। डालगणी के बाद कालूगणी ने संघ का दायित्व संभाला। उधर देवगढ़ के कस्तूरजी आछा वैरागी बने। चातुर्मास्य के बाद उनकी दीक्षा होनी थी। मेवाड़ के विशिष्ट श्रावक जवाहरलालजी बोरदिया ने (देवरिया) चातुर्मास्य के आखिरी दिनों में कालूगणी के दर्शन किए। उन्होंने दीक्षा की दृष्टि से मुनि पृथ्वीराजजी को देवगढ़ रखने की प्रार्थना की। कालूगणी ने आदेश दिया कि कुछ दिन आसपास के गांवों का स्पर्श कर पुनः देवगढ़ आकर दीक्षा दे देंगे। बोरदियाजी ने दीक्षा के आदेश की बात तो मुनिश्री को बता दी, पर गांवों के स्पर्श की बात कहना भूल गए। दीक्षा के कल्प में चातुर्मास्य के बाद कुछ दिन रहा जा सकता है। इस आधार पर मुनिश्री देवगढ़ रह गए। यह बात कालूगणी को अखरी।

पन्द्रह दिन बाद कस्तूरजी को दीक्षा देकर मुनिश्री ने कालूगणी के दर्शन किए। कालूगणी की दृष्टि का अन्तर उनसे छिपा नहीं रहा। उन्होंने अनुनय विनय किया। कालूगणी–'आपने निर्देश का पालन कैसे नहीं किया? आप इतने दिन देवगढ़ कैसे रहे?'

मुनिश्री–'वहां रहने का आदेश था। यदि मुझे ज्ञात होता कि वहां रहने का आदेश नहीं है तो मैं एक दिन भी नहीं रहता।'

उस समय संचार-साधनों की सुविधा नहीं थी। मुनिश्री के कथन की पुष्टि नहीं हो पाई और कालूगणी की दृष्टि में आया अन्तर बना रहा। ऐसी स्थिति में मुनिश्री का मानसिक विचलन स्वाभाविक था, फिर भी कालूगणी की सेवाभक्ति में कोई अन्तर नहीं आया।

कुछ समय बाद बोरदियाजी ने दर्शन किए, उनसे बातचीत हुई। उन्होंने स्पष्ट कहा–'मुनिश्री की कोई गलती नहीं है। यह भूल मेरी है। मैं गांवों में रहने की बात बताना भूल गया। यथार्थ स्थिति की जानकारी मिलने के बाद कालूगणी के मन में इस बात का विचार

हुआ कि अकारण ही मैंने मुनि पृथ्वीराजजी के प्रति कठोर रुख अपनाया। संभवतः पूज्य कालूगणी का यह चिन्तन था—'डालगणी का स्वर्गवास हो गया। मैं नया हूं, यह सोचकर मेरे आदेश की उपेक्षा की गई है। इस चिन्तन के कारण उन्होंने मुनिश्री को उपालम्भ दिया, किन्तु मुनिश्री ने उस उपालम्भ को मौन रहकर सहन किया, किञ्चित मात्र भी उसका प्रतिवाद नहीं किया। जिस संगठन में सहिष्णुता का मूल्यांकन किया जाता है, उस संगठन का कल्पतरु शतशाखी बनकर लहलहाता है।

संगठन के कल्पतरु को हरा-भरा करनेवाला **तीसरा अमृत तत्त्व है सहयोग, परस्पर एक-दूसरे को सहयोग देना।** जहां सहयोग की चेतना विकसित रहती है वह परिवार, समाज व देश उन्नति के सोपान पर क्रमिक आरोहण करता है। आचार्य शिष्यों का सहयोग करते हैं और शिष्य आचार्य का। आचार्य शिष्यों को वाचना देते हैं, उनका योगक्षेम करते हैं और शिष्य आचार्य के कार्यों को सम्पादित करने में प्रतिक्षण तैयार रहते हैं। बड़े छोटों को सहयोग प्रदान करते हैं और छोटे बड़ों को। 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' सूत्र के आधार पर हमारा जीवन चलता है। सहयोग में सबका एक काम नहीं होता। जहां, जिसे, जो काम दिया जाता है, यदि वह उस कार्य को उसी रूप में संपन्न करता है तो वह उसका सहयोग है। सबका एक साथ योग मिलने पर संगठन तेजस्वी बनता है। सब व्यक्ति अलग-अलग रहें सब अपनी अलग-अलग खिचड़ी पकाएं तो कभी भी संगठन मजबूत नहीं रह सकता। आचार्य अलग और शिष्य अलग, अग्रगामी अलग और सहगामी अलग ऐसा होता है तो संगठन का कल्पतरु मुरझा जाता है। जिस संघ में परस्पर सहयोग के लिए प्रत्येक व्यक्ति अहमहमिकया तत्पर रहता है वहां संगठन का कल्पतरु पुष्पित और फलित होता रहता है।

संगठन के कल्पतरु को हरा-भरा रखनेवाला **चौथा अमृत है वात्सल्य** —यानी बड़ों की छोटों के प्रति वत्सलता। जो बड़े बन गए, वे छोटों की उपेक्षा करते हैं अथवा छोटों पर ध्यान नहीं देते, वहां संगठन शक्तिशाली नहीं बनता। हर संगठन में मुखिया तो 2-4 या 5-10 होते हैं और सहगामी हजारों लोग होते हैं। अगर सहगामी की उपेक्षा की जाए, उनकी अपेक्षाओं को प्राथमिकता न दी जाए, तो संगठन फल-फूल नहीं सकता। जब छोटों की उपेक्षा होती है तब उनके मन में प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है और प्रतिक्रिया कलह के बीजों को अंकुरित कर देती है।

वास्तव में बड़ा होना एक विचित्र संयोग है। बड़ा वह होता है जो कुछ कर सकता है, दूसरों का हित साध सकता है, दूसरों का भला कर सकता है। हमने किसी को बड़ा मान लिया, किन्तु बड़प्पन का यह अर्थ नहीं कि दूसरों को छोटा मानकर उसकी उपेक्षा करता रहे, उसकी बात को न सुने। बड़ों को तो अधिक जागरूक होना चाहिए। उनमें सबको साथ लेकर चलने की कला विकसित होनी चाहिए। उन्हें अनेक बार दूसरों की बात को सुनना पड़ता है, कभी-कभी उनकी भावनाओं को सम्मान भी देना होता है, इसलिए बहुत आवश्यक है वात्सल्य अथवा वत्सलता। वत्सल शब्द का उत्स है वत्स। वत्स का अर्थ है बछड़ा। जैसे गाय अपने बछड़े के प्रति स्नेह अभिव्यक्त करती है, प्यार दिखलाती है वैसे ही आचार्य शिष्य को वात्सल्य दें। अग्रगामी को अपने सहगामी के साथ प्यार का, प्रेम का और वत्सलता का व्यवहार करना चाहिए। यह वत्सलता अथवा वात्सल्य संगठन के कल्पतरु को बरगद का आकार देती है।

संगठन के कल्पवृक्ष को सदाबहार बनाने का **पांचवां अमृत है ग्रहणशीलता।** तेरापंथ के आचार्यों में ग्रहणशीलता का विलक्षण गुण रहा है। जो नई-नई बातों को ग्रहण कर सकता है, उसका दिमाग कुण्ठित नहीं होता। उसके मस्तिष्क का दरवाजा हर नई बात को ग्रहण करने के लिए खुला रहता है। मैंने आचार्य तुलसी को निकटता से देखा है। ग्रहणशीलता में उनका प्रथम स्थान था। कोई भी अच्छी बात को तत्काल ग्रहण कर लेते। वि. सं. 2005 का चातुर्मास्य छापर में था। पट्टोत्सव का कार्यक्रम चल रहा था। उस समय आचार्यवर एक पत्रिका पढ़ रहे थे। आचार्यवर ने पत्रिका को देखा और मुझे कहा—'देखो, सोवियत संघ का कितना अच्छा पाठ्यक्रम है। हमारे साधु-साध्वियों के अध्ययनार्थ अभी कोई पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं है। हमें भी एक कोर्स का निर्धारण करना चाहिए।' मैंने कहा—'हमें भी उसी

अनुसार 'योग्य, योग्यतर और योग्यतम' का सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम निश्चित करना चाहिए।

यात्रा के दौरान आचार्यवर महाराष्ट्र के मंचर गांव में प्रवास कर रहे थे। आहार के पश्चात् आचार्यवर 'धर्मदूत' पत्रिका पढ़ रहे थे। उसमें देखा—बर्मा (म्यांमार) में बौद्ध-पिटकों का संपादन हो रहा है। आचार्यवर ने तुरत मुझे बुलाया और कहा—'कितने बौद्ध-पिटकों का सम्पादन हो चुका है, और अब भी वह कार्य चल रहा है। जैन आगमों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया। उनका भी अच्छा सम्पादन होना चाहिए। बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बौद्ध-पिटकों का फिर से सम्पादन हो रहा है। इस बात को उन्होंने ग्रहण कर लिया। मुझे बुलाया, पूछा—'बोलो आगम सम्पादन के लिए तैयार हो।' मैंने कहा—'हम सब तैयार हैं।' सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद साधु इकट्ठे हुए। आचार्यवर ने घोषणा कर दी—अब हम जैन आगमों के सम्पादन का काम हाथ में ले रहे हैं।

आचार्यवर के चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति में फासला नहीं रहता था। आगम सम्पादन के लिए चिन्तन किया, निर्णय किया और उसकी क्रियान्विति हो गई। कार्य आरम्भ कर दिया।

गुरुदेव की ग्रहणशीलता विलक्षण थी। मैं जब भी कोई नई बात कहता या कोई नया श्लोक भाषण में बोलता, गुरुदेव तत्काल नोट कर लेते। जब भी मेरा लेख किसी पत्र-पत्रिका में आता गुरुदेव स्वयं उसे पढ़ते और अन्य साधु-साध्वियों, समणियों को पढ़ने को प्रेरित करते। एक दिन मैं व्याख्यान के बाद अचानक गुरुदेव के उपपात में पहुंचा। वहां साध्वीप्रमुखा, कुछ साध्वियां और संत बैठे हुए थे। गुरुदेव ने जैसे ही मुझे देखा, फरमाया—'देखो, तुम्हारा ही लेख पढ़ रहे हैं।' कल्पना करें, ग्रहणशीलता जिस व्यक्ति में होती है वह कितना महान् होगा?

संस्कृत साहित्य में एक सूक्त प्रयुक्त होता है—अमेध्यादपि काञ्चनम्—अगर सोना उकुरड़ी पर पड़ा है तो भी उसे उठा लेना चाहिए। ग्रहणशीलता नहीं होती है तो पैर में पड़ा सोना भी आदमी उठा नहीं पाता। एक व्यक्ति ने घड़ा औंधा रख दिया। रात्रि में खूब बरसात हुई। प्रातःकाल आया, देखा—घड़े में कितना पानी है? घड़ा खाली था। उसे सीधा किया और बोला—'इतनी वर्षा हुई, किन्तु मेरे घड़े में पानी नहीं भरा। आखिर कारण क्या है?' घड़े ने मनुष्य की भाषा में पूछा—'भैया! दोष तेरा है या मेरा? तुमने घड़े को औंधा रख दिया, उसमें पानी कैसे आएगा। यदि घड़े का मुंह सीधा होता तो वह पानी से भर जाता।' गुरुदेव यावज्जीवन ग्रहणशील बने रहे। उनके जीवन की पोथी को कोई पढ़े तो पता चलेगा कि उन्होंने सैकड़ों बातें ग्रहण की हैं।

'बालादपि सुभाषितम्'—एक बालक भी कोई अच्छी बात कहे तो उसको ग्रहण कर लेना चाहिए। विकास की बहुत बड़ी कला है ग्रहणशीलता। जहां भी लगे कि अच्छी बात है उसे पकड़ लें, ग्रहण कर लें।

जो संगठन ग्रहणशील नहीं होता, नई बात को स्वीकार नहीं करता, केवल पुरानी लकीर पर ही चलता है, वह कभी विकास नहीं कर सकता। आचार्य तुलसी ने नई बातों को स्वीकार किया, किन्तु जो बातें पुरानी हैं, उपयोगी हैं उनको नहीं छोड़ा। उन्होंने अनेकान्त की त्रिपदी का प्रयोग किया। जो उपयोगी था उसे सदैव महत्त्व दिया, जो अनुपयोगी था उसे छोड़ दिया। पांच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये शाश्वत तत्त्व हैं, ध्रौव्य हैं। इन्हें कभी छोड़ा नहीं जा सकता। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य की त्रिपदी सारी सृष्टि पर लागू होने वाली त्रिपदी है।

हर समझदार व्यक्ति जो संगठन में रहता है अथवा संगठन को बढ़ाना चाहता है, वह संगठन फिर चाहे राजनैतिक हो, धार्मिक हो, व्यवसाय संबंधी हो, किसी भी प्रकार का हो, उसे इन पांच अमृत तत्त्वों पर ध्यान देना होगा। जहां ये पांच अमृत तत्त्व होते हैं वहां सब प्रफुलित रहते हैं।

ये पांच अमृत तत्त्व अनुशासन के सूत्र हैं, व्यवस्था के सूत्र हैं, विकास के सूत्र हैं, संगठन के सूत्र हैं। इन सूत्रों का गहराई से चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करने से संगठन का कल्पवृक्ष फलता-फूलता है और सदा हरा-भरा रहता है। ❑

संघनिष्ठा का विकास

हमारे द्वारा ऐसा कोई कार्य न हो, जिससे संघ का अहित हो। संघ के प्रति हमारी निष्ठा इतनी हो कि जीएंगे तो संघ में और मरेंगे तो संघ में। यह भी कहा जा सकता है कि शासन के लिए ही जीएंगे और शासन के लिए ही मरेंगे। हमारे भीतर शासन के प्रति निष्ठा की भावना पुष्ट रहनी चाहिए। पदोन्नति, सम्मान या व्यवस्था की बातों को लेकर संघ को छोड़ने का विचार सपने में भी नहीं आना चाहिए।

आचार्य महाश्रमण

दो प्रकार की साधना पद्धतियां निर्दिष्ट हैं–

1. व्यक्तिगत साधना, 2. संघबद्ध साधना। एक समय था जब वैयक्तिक साधना मान्य थी, परन्तु वर्तमान समय में वैयक्तिक साधना का अथवा एकाकी साधना का प्रयोग या एकल विहार का प्रयोग लगभग वर्जित है। हमने जो पद्धति स्वीकार की है, वह संघबद्ध साधना की पद्धति है। संघ बड़ा आलम्बन होता है, कठिनाई में उससे सहारा मिलता है, विषम स्थिति में पथप्रदर्शन भी प्राप्त होता है। समूह का अपना बल होता है। हमारे धर्मसंघ में संघबद्ध साधना भी काफी व्यवस्थित है। महामना आचार्य भिक्षु ने ऐसा विधान रचा, जो वरदान बन गया। उन्होंने ऐसी मर्यादाओं का निर्माण किया, जो संघ की सुरक्षा प्रहरी बनी हुई हैं। जो संघ में साधना करते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे संघीय चेतना को विकसित रखें, सामुदायिक चेतना का विकास करें। वहां व्यक्ति गौण है, संघ मुख्य है। मैं सोचता हूं कि आचार्यों से भी बड़ा संघ है, शासन है। शासन का ही कोई साधु आचार्य पद को सुशोभित करता है। शासन है तो आचार्यों का मूल्य है। शासन के बिना आचार्यों का कितना और क्या मूल्य होगा? तेरापंथ है तो तेरापंथ के अधीश का मूल्य है। तेरापंथ ही न हो तो अधीश का फिर क्या मूल्य होगा? इसलिए संघपति की अपेक्षा शासन की महत्ता ज्यादा है। इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए गुरुदेव तुलसी ने कहा–

प्रभो ! यह तेरापंथ महान् ।
मिला, मिलेगा जिससे सबको आध्यात्मिक अवदान।।
आर्हत् वाङ्मय का उद्गाता,
जीवन-दर्शन का व्याख्याता।
मानव संस्कृति का निर्माता,
जिसके कण-कण में मुखरित है शाश्वत का संगान।।

तेरापंथ शासन महान् है। संघपति शासन के प्रतिनिधि होते हैं, शासन के प्रतीक होते हैं और शासन के अनुशास्ता भी होते हैं, इसलिए शासन के पीछे शासनपति का महत्त्व होता है। चूंकि वे आज्ञा के धारक, आज्ञा प्रदान करने वाले, निर्देश देने वाले और संघ रूपी जहाज को चलाने वाले होते हैं, इसलिए आचार्यों का भी बड़ा महत्त्व है। जिस संघ में हम जी रहे हैं, उसके प्रति हमारे मन में अपनत्व का भाव होना चाहिए।

परमपूज्य गुरुदेव तुलसी ने कर्तव्यषट्त्रिंशिका में कहा है–

गणोऽयमहमेवास्मि, अहमेव गणोऽस्त्ययम्।
ऐक्यं ममास्य चान्योन्यं, चिन्तनीयमिति ध्रुवम।।

यह गण मेरे लिए और मैं गण के लिए हूं। मेरा और गण का परस्पर अविच्छिन्न संबंध है। बार-बार यही बात सोचनी चाहिए।

व्यक्ति स्थायी नहीं होता। जो व्यक्ति कल था, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगा। व्यक्ति तो आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु संघ चिरस्थायी है। हम मंगलकामना करते हैं कि हमारा धर्मसंघ लम्बे काल तक चलता रहेगा। संघ का हित हो, भला हो, विकास हो, यह निष्ठा हमारे मन में रहनी चाहिए।

प्रथम मंत्रीमुनि श्री मगनलालजी स्वामी की संघीय भावना उल्लेखनीय है। एक बार वे सरदारशहर में विराजमान थे। एक परिवार उनके पास मंगलपाठ सुनने आया। मगनलालजी स्वामी ने पूछा—'कहां जा रहे हो?' उन्होंने कहा—'आचार्यश्री की सेवा में जा रहे हैं।' तब मगनलालजी स्वामी ने फरमाया—'आचार्यश्री की सेवा करना अच्छी बात है, पर अभी एक साध्वियों का सिंघाड़ा जा रहा है। उनकी सेवा कौन करेगा?' उन्होंने साध्वियों के सिंघाड़े को अधिक महत्त्व दिया। आचार्यों की सेवा में जाने वालों को साध्वियों की सेवा करने का इंगित प्रदान किया।

हमारे द्वारा ऐसा कोई कार्य न हो, जिससे संघ का अहित हो। संघ के प्रति हमारी निष्ठा इतनी हो कि जीएंगे तो संघ में और मरेंगे तो संघ में। यह भी कहा जा सकता है कि शासन के लिए ही जीएंगे और शासन के लिए ही मरेंगे। हमारे भीतर शासन के प्रति निष्ठा की भावना पुष्ट रहनी चाहिए। पदोन्नति, सम्मान या व्यवस्था की बातों को लेकर संघ को छोड़ने का विचार सपने में भी नहीं आना चाहिए।

हमें भाग्य से ऐसा शासन मिला हुआ है। कोई निकट का व्यक्ति भी यदि संघ से अलग होने का विचार करे तो हमें उसका भी साथ नहीं देना चाहिए। उसे यह बताना चाहिए कि तुम संघ में रहो तो हम तुम्हारे साथ हैं। यदि तुम संघ छोड़ते हो तो हमारा तुमसे कोई संबंध नहीं है। हमारा संबंध व्यक्ति के साथ नहीं, शासन और शासनपति के साथ है। यह निष्ठा छोटे-बड़े सभी साधु-साध्वियों में रहनी चाहिए। हम जिनशासन और भिक्षुशासन की जहाज में बैठे हैं। इस जहाज से अलग होने का चिन्तन कभी भी हमारे दिमाग में प्रविष्ट नहीं होना चाहिए।

शासन में हमारे पांव मजबूत रहें। भले ही उलाहना मिल जाए, डांट पड़ जाए, परिषद् के बीच अपमानित कर दिया जाए, इन सबको विनय भाव से झेलना चाहिए और शासन में जमे रहने का संकल्प हमारे दिलो-दिमाग में पुष्ट रहना चाहिए।

उन साधु-साध्वियों को मैं बार-बार साधुवाद देना चाहता हूं, जो मौके पर निष्ठा के साथ शासन में जमे रहे। किसी भी परिस्थिति में वे अलग नहीं हुए। उन्होंने शासन के प्रति कितनी निष्ठा रखी? वर्तमान और भविष्य में भी ऐसी शासननिष्ठा हम सभी में बनी रहे।

हम शासन की सेवा में अपनी शक्ति का नियोजन करते रहें। गुरु किसी कार्य का निर्देश दें तो उसे अहोभाव के साथ स्वीकार करना चाहिए।

पृष्ठो गुरुभिराहूतो, निर्दिष्टोऽभीष्टकर्मणि।
मन्वानो भागधेयंस्वं, धन्यंधन्यस्तथाचरेत्।।

यदि शिष्य से गुरु कोई बात पूछे या कार्यवश अपने पास बुलाए अथवा किसी आवश्यक कार्य को करने का आदेश दे तो शिष्य अपना परम सौभाग्य समझता हुआ सहर्ष निर्दिष्ट कार्य में प्रवृत्त हो।

गुरु शासन के अभिन्न अंग हैं, शासन के अनुशास्ता हैं। गुरु की भक्ति शासन के प्रति भक्ति है। शासन-भक्ति का एक प्रकार है— वृद्ध, ग्लान, साधु-साध्वियों की सेवा। संघ के हर सदस्य में सेवा की भावना रहनी चाहिए। प्रत्येक साधु-साध्वियां भावना भाएं कि मुझे वृद्ध और ग्लान की सेवा का मौका मिले। साधु की सेवा मुख्यतया साधु करता है। एक साधु को अपेक्षा हो तो दूसरे साधु को उसकी सेवा के लिए अहोभाव के साथ तैयार रहना चाहिए। जब भी हमें सेवा का मौका मिले तो उसको भार नहीं, उपहार मानना चाहिए। हम उसे गुरु की कृपा अथवा शासन की कृपा मानकर शिरोधार्य करें। हम सोचें की यह हमारा सौभाग्य है। उससे भी उत्तम

बात है, व्यक्ति स्वयं सेवा के लिए निवेदन करे। कहने पर सेवा करे, वह तो ठीक है, पर चलाकर स्वयं कहे कि मुझे सेवा का मौका दें, यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात होती है। सेवा की भावना व्यक्त करने से निर्जरा का लाभ भी मिलेगा और संघीय भावना भी अभिव्यक्त हो सकेगी, इसलिए सेवा के प्रति भी जागरूकता और निष्ठा बनी रहनी चाहिए।

हम हमारे प्रत्येक कार्य में व्यक्तिगत नाम की आकांक्षा न रखें, तेरापंथ शासन की महिमा बढ़ाने का प्रयास करें। कहीं भी जाएं, कहीं भी रहें, शासन के साथ हमारा तार हमेशा जुड़ा रहे। हमारे साधु-साध्वियों में आज्ञा के प्रति जो निष्ठा है, वह प्रशंसनीय है। साधु-साध्वियों में ही नहीं, समण-समणियों में भी मुझे आज्ञा के प्रति निष्ठा का भाव दृष्टिगोचर होता है। साधु-साध्वियां, समण-समणियां कहीं भी रहें, वे आज्ञा की रस्सी से बंधे हुए रहते हैं, जैसे पतंग डोर से बंधा हुआ रहता है। जिस प्रकार पतंग की डोर को खींचकर पतंग को ऊपर से नीचे अथवा पास में लाया जा सकता है और डोर के सहारे पतंग को दूर भी संप्रेषित किया जा सकता है, उसी प्रकार हमारे साधु-साध्वियां, समण-समणियां भी एक आज्ञा की डोर के आधार पर कहां से कहां तक चले जाते हैं और निर्देश मिलते ही गुरुचरणों में उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार आज्ञानिष्ठा भी संघनिष्ठा का एक अंग है।

राजा के मुकुट में उन मणियों को स्थान मिलता है, जो सान अथवा कसौटी पर खरी उतरती हैं, उसी तरह जो साधु-साध्वियां गुरु के डांटने पर भी विनय का भाव रखते हैं, वे कसौटियों पर खरे उतरते हैं। संघ में उनका महत्त्व बढ़ता है। संघ में यदा-कदा उनका सम्मान भी किया जा सकता है, इसलिए गुरुओं के उपालम्भ को कभी अन्यथा नहीं लेना चाहिए, मन में मलिनता का भाव नहीं लाना चाहिए। उसको तो प्रसाद मानकर स्वीकार करना चाहिए और अपनी गलती का परिष्कार करने का प्रयास करना चाहिए।

शासन के लिए जरूरत हो तो प्राण भी देने के लिए तैयार रहना चाहिए। हालांकि प्राण की जरूरत तो नहीं पड़ती परन्तु संकल्प का बल चाहिए। सेवा की भावना चाहिए। शासन को जरूरत है तो हम शासन की सेवा के लिए तैयार हैं, ऐसा हमारा समर्पण का भाव शासन और शासनपति के प्रति बना रहना चाहिए। न केवल साधु-साध्वियों के लिए, श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी यह बात ध्यातव्य है कि उन्हें भी शासन की सेवा के लिए तैयार रहना चाहिए और शासनपति का जो इंगित मिले, जो निर्देश मिले, उसको कहीं कोई चुनौती देने का साहस नहीं करना चाहिए। कोई बात हो तो उसे निवेदित किया जा सकता है। निवेदन करना कोई बुरा नहीं है। निवेदन के बाद जो अन्तिम निर्णय शासन या शासनपति का हो, उसे शिरोधार्य करना चाहिए। वह अपने आपमें विशिष्ट होता है।

शासनपति से लेकर श्रावक-श्राविका तक सबके लिए यह वांछनीय है कि हम सभी के मन में शासन के प्रति समर्पण और निष्ठा की भावना पुष्ट बनी रहे। ❑

छोटा समझकर उपेक्षा न करें-

हस्ती स्थूलवपुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽकुशः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो नगः।
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।

स्थूल हाथी को एक छोटा-सा अंकुश वश में कर सकता है, एक नन्हा सा दीपक सघन अंधकार का हरण कर सकता है, बड़े-बड़े पहाड़ों को छोटा-सा वज्र धराशायी कर सकता है। इसलिए 'यह छोटा है' यह समझकर हर किसी की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। मानव जीवन बहुत कीमती है। इसको सजाने-संवारने के लिए छोटी लगने वाली बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे चलना, कैसे बोलना आदि बातें बहुत छोटी लगती है पर जीवन-महल को खड़ा करने वाली नींव की ईंटें भी ये ही हैं।

वर्द्धमान बनने की तैयारी

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रत्येक व्यक्ति, पदार्थ और संगठन की तीन अवस्थाएं होती हैं—अवर्द्धित, वर्द्धमान, और वर्द्धित। आज की भाषा में कह सकते हैं—अविकसित, विकासशील और विकसित। अविकसित अवस्था किसी को काम्य नहीं होती। वहां कुछ भी नहीं होता। आदमी जहां है—उसी स्थिति में रहता है। विकसित अवस्था सबको अच्छी लगती है, लेकिन वहां भविष्य की संभावनाओं पर पूर्णविराम लग जाता है। इस स्थिति में विकासशील अवस्था अच्छी मानी जाती है।

चांद पर यान

हमारा देश विकासशील है। दुनिया के समस्त राष्ट्रों को तीन भागों में विभक्त किया गया है—अविकसित, विकासशील और विकसित। वर्तमान में भारत की गणना विकासशील राष्ट्रों में है। स्वतंत्र होने के बाद हमारा देश विकास के सोपानों पर निरंतर आरोहण कर रहा है और विकसित होने के लिए या यूं कहें कि महाशक्ति बनने के लिए अपने लक्ष्य भी निर्धारित करता रहा है। जब भारत ने चांद की धरती पर अपना ध्वज फहराया था उससे पहले तीन देशों ने चांद पर फतह हासिल कर ली थी। वे देश हैं—अमेरिका, रूस और जापान। पूरे विश्व में भारत चौथा देश है, जिसने चंद्रमा पर अपना यान उतारा और वहां भारत का ध्वज फहराया।

न्यूक्लियर पावर बनने वाला भारत छठा देश है। अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन—ये पांच देश पहले ही परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र बन चुके हैं। भारत इस क्रम में छठा देश है। अब भारत ने अपने आगामी जो लक्ष्य बनाए हैं, उनमें प्रथम लक्ष्य है—संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता प्राप्त करना। यह सदस्यता अभी तक पांच देशों को ही मिली है। छठा उम्मीदवार भारत है।

दूसरा लक्ष्य है—मंगल मिशन। चांद के बाद अब मंगल पर भी वह अपना झंडा फहराना चाहता है।

एक अवस्था वह होती है कि जहां आदमी खड़ा है, वहीं अवस्थित रह जाता है। इससे उसके जीवन में ठहराव आ जाता है। दूसरी अवस्था प्रगति की होती है। आदमी आगे बढ़कर अभीप्सित को प्राप्त कर लेना चाहता है। तीसरी अवस्था है प्रवर्द्धमान रहने की। जहां तक तेरापंथ धर्मसंघ की बात है वह विकासशील धर्मसंघ है। यह वर्द्धमान महोत्सव विकास के नए क्षितिज खोलने का ही एक उपक्रम है।

क्यों आते हैं यहां?

कुछ लोगों के मन में यह प्रश्न हो सकता है, जिज्ञासा हो सकती है कि इतने साधु-साध्वियां दूर-दूर से यात्रा करके यहां पहुंचे हैं। उनमें कई वृद्ध हैं, कुछ अस्वस्थ हैं, फिर सर्दी के समय, इतना कष्ट उठाकर यहां क्यों आते हैं? उत्तर सिर्फ एक होगा—सब वर्द्धमान बनने के लिए यहां आते हैं। यद्यपि यात्रा करना कष्ट साध्य है। आचार्यवर स्वयं भी यात्रा करके आए हैं और साधु-साध्वियां भी लंबी दूरी तय कर गुरु सन्निधि में पहुंचे हैं। इसका सबकी ओर से एक ही उत्तर है—

एगागिस्स हि चित्ताहिं विचित्ताणि खणे खणे।
उप्पजंति वियंते च वसेव सजणे जणे।।

अगर साधक अकेला रहता है तो क्षण-क्षण उसका चित्त विचित्र अवस्थाओं से गुजरता है। उसके मन में कई तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं। अनेक तरह के विचार प्रवाह मन में उमड़ते हैं और विलीन भी होते हैं। उसे वहां कोई संभालने वाला नहीं होता। इसलिए बड़े समूह के साथ रहना जरूरी है। पूज्यवरों के चरणों में जब इतना बड़ा संघ उपस्थित होता है तो उनके सामने भी एक मुख्य लक्ष्य होता है कि साधु-साध्वियों के, समण-समणियों के, श्रावक-श्राविकाओं के जीवन में विकास कैसे हो, उनकी साधना में नया निखार कैसे आए और उनकी ज्ञान-चेतना कैसे जागे? इस दृष्टि से पूज्यवर सचेष्ट रहते हैं।

अंतर्दृष्टि जागे

जहां तक मैं समझ पाई हूं, विकास के लिए और कुछ करने की जरूरत नहीं है, केवल अंतर्दृष्टि जगाने की जरूरत है। अगर हमारी अंतर्दृष्टि जाग जाए तो विकास के अनेक रास्ते स्वयं खुल जाते हैं। कवि ने ठीक कहा है—

एक किरण काफी है, सूरज उगाने को।
एक अगन काफी है, जड़ता भगाने को।।

अगर व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर जड़ जमाए बैठी जड़ता भाग जाए या दूर हो जाए तो विकास के रास्ते स्वयमेव खुल जाते हैं।

विकास की बाधाएं

प्रश्न होगा—विकास की सबसे बड़ी बाधा क्या है? आज के मनुष्य की मनोवृत्ति कुछ विचित्र-सी हो रही है। आज का मानव बहाना बनाना चाहता है। बहाना मनोवृत्ति एक ऐसी बीमारी है, जो व्यक्ति को आगे बढ़ने से रोकती है। मनोवैज्ञानिकों ने विकास के बाधक तत्त्वों की चर्चा करते हुए या कहें वर्द्धमान होने के बाधक तत्त्वों की चर्चा करते हुए चार प्रकार के साइटिस/बहानों का उल्लेख किया है। एक प्रकार से ये असफलता के चार घटक तत्त्व हैं—

पहला है—सेहत साइटिस। आज किसी व्यक्ति के सामने कार्य करने का कोई अवसर आता है, सीखने का मौका उसके हाथ लगता है या साधना का कोई नया प्रयोग करना होता है तो वह कहता है—क्या करूं, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। हर समय अस्वस्थता का अनुभव होता है। यह बीमारी का अहसास आदमी को आगे बढ़ने से रोकता है। बीमारी का अहसास होने का मतलब ही है हमारी चेतना में जंग लग गया है। जंग लगने से अच्छा है घिस जाना। हम अपनी चेतना का निरंतर घर्षण करते रहें, और इस सेहत साइटिस से उसे बचाते रहें। अगर ऐसा होता है तो बहुत बड़ा विकास हो सकता है।

दूसरा घटक है—बुद्धि साइटिस। कुछ लोगों की यह अवधारणा बन जाती है कि मुझमें बुद्धि नहीं है, ऐसे में मेरा विकास क्या होगा, कैसे होगा? बिना बुद्धि के मैं आगमों का अध्ययन कैसे कर सकता हूं? विभिन्न दर्शनों को कैसे जान सकता हूं। वक्तृत्व कला को विकसित कैसे कर सकता हूं? बुद्धि नहीं होने से मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूं।

पर वह इस बात को भूल जाता है कि जन्मजात बुद्धि तो किसी-किसी में होती है। सबको विकसित बुद्धि नहीं मिलती। उसका विकास करना पड़ता है। अगर रुचि, लगन और पुरुषार्थ का योग हो तो बुद्धि को प्रखर किया जा सकता है। इस तरह बुद्धि साइटिस से भी हमें अपने आपको बचाकर रखना है।

तीसरा घटक है—उम्र साइटिस या अवस्था का बहाना। बहुधा यह कह दिया जाता है कि उम्र आ गई, अब हमसे क्या हो सकता है? जब उम्र थी तो हमसे जो हो सकता था, किया। अब पैंसठ-सत्तर वर्ष की उम्र में क्या कर सकता हूं?

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बीस से सत्तर वर्ष तक की अवस्था रचनात्मक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। हमारे बहुत से साधु-साध्वियां, समणियां चालीस वर्ष की उम्र के हैं। अगर वे चालीस वर्ष की अवस्था को सोचकर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाएं तो क्या होगा? चालीस की उम्र चश्मा लगने की उम्र तो

होती है, लेकिन कार्यक्षमता की दृष्टि से चालीस की उम्र कोई बड़ी उम्र नहीं होती। इसे तो जीवन का मध्यकाल मानना चाहिए।

चालीस वर्ष की अवस्था आ गई तो भी उसके आगे लगभग तीस वर्ष हमारे पास हैं। इस महत्त्वपूर्ण समय में हम रचनात्मक दृष्टि से कुछ भी काम कर सकते हैं। अगर हम उम्र का बहाना न बनाएं तो अवसर के दरवाजे हमारे लिए हमेशा खुले हैं, बशर्ते कि हम उन खुले दरवाजों या गवाक्षों को देख सकें।

बाढ़ की विभीषिका में पूरा क्षेत्र घिर गया। नदी के निकटवर्ती एक गांव में बड़ी तेजी से पानी भरने लगा। ग्रामीण लोग गांव छोड़कर ऊंचाई पर जाने लगे। लगभग सभी लोग अपने-अपने घर छोड़कर सुरक्षित स्थान पर चले गए। एक आदमी जो ईश्वर पर बहुत भरोसा करता था, उसने गांव छोड़ने से इनकार कर दिया। वह बोला—'मैं कहीं नहीं जाऊंगा। भगवान पर भरोसा है। वे मुझे हर स्थिति में बचाएंगे।' गांव में पानी प्रवेश करने लगा तो एक नाव उधर आई। नाविक ने कहा—'पानी का वेग बढ़ता जा रहा है। जल्दी से नाव में आ जाओ।' उस भक्त आदमी ने यह कहकर इनकार कर दिया कि मुझे नाव की जरूरत नहीं। मुझे बचाने वाला भगवान है। मुझे उसी का भरोसा है।' नाविक ने नाव आगे बढ़ा दी।

बाढ़ का पानी लगातार बढ़ता ही जा रहा था। तभी एक मोटरबोट उधर से गुजरी। घर की छत पर पहुंचने का उपक्रम कर रहे आदमी को देखा तो बोट वाले ने आवाज लगाई और उसे बोट पर आ जाने को कहा। भगवान के भरोसे निश्चिंत उस आदमी ने उसकी बात भी नहीं मानी और कह दिया कि बचाने वाला भगवान है, वही कुछ करेगा।

अब वह आदमी अपने घर की छत पर पहुंच गया, लेकिन पानी का वेग पहले से भी ज्यादा बढ़ गया था। तभी ऊपर से हेलीकॉप्टर की आवाज आई। पानी से घिरे व्यक्ति को देखकर पायलट हेलीकॉप्टर को घर की छत पर बहुत नीचे की ओर लाया और एक सीढ़ी लटकाकर कहा—'तुम इसी सीढ़ी का इस्तेमाल कर हेलीकॉप्टर में आ जाओ। बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।' बाढ़ में घिरे व्यक्ति ने अब भी भगवान का भरोसा नहीं छोड़ा और साफ इनकार करते हुए कहा—'मेरा भरोसा सिर्फ भगवान पर है। मैं किसी दूसरे का सहारा नहीं लूंगा।'

आखिर वही हुआ जो होना था। बाढ़ से घिरा पूरा घर तबाह हो गया और उसी के साथ भगवान का वह भक्त भी पानी में समा गया। भगवान का भक्त था। इसलिए मरने के बाद वह स्वर्ग में पहुंचा तो उसकी मुलाकात भगवान से हुई। उसने उपालंभ के स्वर में कहा—'प्रभु! जीवनभर आपकी पूजा—अर्चना की। अंतिम समय में भी आपका भरोसा नहीं छोड़ा। मैंने आपको कितनी पुकार लगाई। अंतिम समय में आपने मुझे बचाया नहीं। क्या मेरी भक्ति में कुछ कमी रह गई थी? आपने ऐसा क्यों किया?'

भगवान ने कहा—'मैंने तुम्हारे लिए पहले नाव भेजी, फिर मोटरबोट भेजी, उसके बाद हेलीकॉप्टर भेजा। अब बताओ, इससे आगे तुम और क्या चाहते थे?'

हमारे पास विकास करने के, वर्धमान बनने के इतने अवसर हैं, लेकिन हम बहानों में इतने उलझ गए कि अवसर का लाभ उठाने की बात मन में आती ही नहीं। हमें प्रतिदिन आचार्यवर से यह प्रेरणा मिलती रहती है कि हम हर क्षेत्र में आगे बढ़ें तथा विकास के नए-नए क्षितिज उद्घाटित करें। हमारे लिए विकास का सबसे बड़ा आधार ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। इन तीनों का विकास हमारा मुख्य लक्ष्य है और होना चाहिए।

चौथा साइटिस है—किस्मत। कुछ लोगों की अवधारणा होती है कि क्या करें, हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं, किंतु भाग्य में ही नहीं लिखा तो मिलेगा कहां से? अगर हमारी सोच सकारात्मक हो, आगे बढ़ने की कोई ठोस योजना दिमाग में हो और उसको सम्यक् रूप से क्रियान्विति करें तो कोई भी स्थिति हमें आगे बढ़ने से रोक नहीं सकेगी। ठीक कहा गया है—

हारे नहीं जब हौसले, तब कम हुए हैं फासले।
काम करने के लिए मौसम नहीं, मन चाहिए।।

❑

तेरापंथ का प्राण केन्द्र - मर्यादा महोत्सव

मुनि सुखलाल

हर प्राणी में जिजीविषा होती है, वह जीना चाहता है, पर मनुष्य दूसरों के जीने में भी विश्वास करता है। यों यूथचारिता पशुओं में भी होती है, पर उसका विस्तार अपना छोटा-सा परिवार ही होता है। मनुष्य भी यदि अपने आस-पास वैसा घेरा बनाता है तो उसे भी पशु से बहुत ऊपर नहीं माना जा सकता। प्रारंभ में शायद मनुष्य के पास भी अपने परिवार में ही जीने की संज्ञा थी, पर धीरे-धीरे उसने अपने आपका विस्तार किया। इस विस्तार की चरम सीमा प्राणीमात्र के प्रति मैत्री है। पर यह बात शायद हर आदमी के लिए संभव नहीं हो सकती। मनुष्य के लिए भी यह संभव नहीं है कि वह अकेला जी सके। ऐसी स्थिति में सजातीय प्राणियों के प्रति सद्भाव/समभाव तो आवश्यक हो ही जाता है। इसी आवश्यकता ने आदमी को समाज में रहना सिखाया। जहां समाज होता है वहां सीमाएं भी स्वाभाविक हैं। उन सीमाओं को चाहे हम संविधान कहें, चाहे मर्यादा कहें, एक ही बात है। संविधान जहां एक राज्य व्यवस्था का अवबोध है, वहां मर्यादा आत्म-स्वीकृति है। फिर भी दोनों का भावार्थ एक-दूसरे के लिए जीने की जगह छोड़ना भी है।

साधना के क्षेत्र में एक आरण्यक-संस्कृति भारत में बहुत प्राचीन काल में प्रचलित थी। साधु-संत समाज से दूर जंगल की गिरि-कन्दराओं में रहते थे। भगवान महावीर ने संघीय साधना पर बल दिया। उन्होंने सहाय्य प्रत्याख्यान के रूप में एकल विहार का भी निषेध नहीं किया। पर उसके लिए उन्होंने कुछ कसौटियां निर्धारित की। तितिक्षाभाव के साथ-साथ शारीरिक-संहनन भी उसकी एक कसौटी थी। जिनका तितिक्षाभाव तथा शारीरिक बल कम था उनके लिए गण-व्यवस्था का उदय हुआ। एकल विहारी को भी गण में आना आवश्यक था।

पर धीरे-धीरे उस व्यवस्था में भी दरारें पड़ने लगीं। जैन-शासन छोटे-छोटे गणों-गच्छों के टुकड़ों में तो बंट ही गया था, पर आंतरिक टूटन से संघीय जीवन इतना छिन्न-भिन्न हो गया कि साधना का संकल्प भी डगमगा गया।

ऐसी स्थिति में भगवान महावीर के लगभग 2225 वर्ष बाद आचार्य भिक्षु का जन्म हुआ। बड़ी छानबीन के बाद उन्होंने उस समय के एक प्रमुख जैन-संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की। कुछ ही वर्षों बाद उन्हें अनुभव किया कि साधुत्व की जिस संकल्पना से उन्होंने परिवार-त्याग किया था, वह साकार हो नहीं पा रही है। उन्होंने चालू परम्परा में सुधार का प्रयत्न किया

पर वह सफल नहीं हो पाया। अतः उन्हें उस सम्प्रदाय का त्याग करना पड़ा। प्रारंभ में उन्हें यह कल्पना नहीं थी कि उनका कोई अलग संघ-संप्रदाय चलेगा, पर धीरे-धीरे उनकी साधना रंग लाई और कुछ लोग उनकी सहगामिता के लिए तैयार हो गए। आचार्य भिक्षु ने आचार-विचार का तो संशोधन किया ही, पर उन्हें इस बात का भी अनुभव हुआ कि समूह-चेतना के बिना कोई संघ आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए उन्होंने शुरू से ही अनुशासन की डोर को कसना शुरू कर दिया।

उस समय जो जैनसंघ प्रचलित थे, उनमें शिष्य परम्परा सर्वमान्य पद्धति थी। आचार्य के जो शिष्य होते वे भी अपने-अपने शिष्य बनाते थे। यह कोई शास्त्रीय आपत्ति वाली बात नहीं थी। पर इससे एक प्रतिस्पर्धा भी जन्म लेने लगी और शिष्यों के लिए अफरातफरी-सी मच गई। ऐसे में साधुत्व की कसौटियां गौण हो गईं और चेला मूंडने की बात आगे आ गई। आचार्य भिक्षु ने इन्हीं अनुभवों के आधार पर शिष्य प्रथा पर रोक लगा दी। उन्होंने कहा—'हमारे संघ में जो भी दीक्षा ग्रहण करेगा वह आचार्य का ही शिष्य होगा। कोई भी साधु अपना अलग शिष्य नहीं बना सकेगा।' आचार्य-केंद्रता की यह बात जैन परम्परा में एक नई शुरुआत थी।

एक आचार्य के साथ-साथ भिक्षु ने एक आचार, एक विचार और समाचारी पर भी जोर दिया। एक ही संघ में यदि आचार, विचार और समाचारी में समानता न हो तो उसे टूटते देर नहीं लगती। विचार ही तो मनुष्य को एक-दूसरे से जोड़ता है। वही आचार और समाचारी का परिपोषक बनता है। इनमें ही मत-भिन्नता होने लगे तो संघ-बद्धता का आधार ही खत्म हो जाता है।

कुछ समाजशास्त्रियों को इसमें अधिनायकवाद की गंध आ सकती है। स्वतंत्रता की अवधारणा के सामने केंद्रीकरण की इस प्रवृत्ति को मनुष्य के विकास की एक बाधा माना जा सकता है, पर समाज व्यवस्था तथा धर्मसंघीय व्यवस्था में एक मौलिक अंतर होता है। समाज व्यवस्था में जहां वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रमुख होती है वहां धर्मसंघों में समर्पण को सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त है। साधना का अर्थ ही है समर्पण। समर्पण के बिना साधना के सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन असंभव है। साधना की राह पर चलते-चलते कुछ ऐसे खतरनाक मोड़ आ जाते हैं जहां यदि शासक में अपना स्वतंत्र अहं शेष रह जाता है तो वह भटक जाता है। आचार्य भिक्षु ने समर्पण की इस बुनियाद पर ही एक आचार्य, एक आचार, एक विचार और एक समाचारी को खड़ा किया था। उन्होंने साधक पर इस बात का दबाव नहीं दिया कि उसे संघ में रहना ही पड़ेगा। उन्होंने हर साधक की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए संघ में रहने और न रहने का निर्णय उस पर ही छोड़ दिया। पर जो संघ में रहेगा उसे आचार्य-केंद्रता का सम्मान करना होगा।

यह किसी एक व्यक्ति का सवाल नहीं था, अपितु एक समूहचारिता का सवाल था। इसीलिए उन्होंने मर्यादाओं का निर्माण किया। इस क्रम में सबसे पहली मर्यादा का निर्माण माघ-शुक्ला 7 के दिन हुआ था। आगे जाकर उसका इतना महत्त्व आंका गया कि उस तिथि को ही प्रतिवर्ष मर्यादा-महोत्सव का रूप दे दिया। मर्यादा-महोत्सव की यह परम्परा भी लगभग 149 वर्षों से अविच्छिन्न चल रही है। मर्यादाओं की सामूहिक स्वीकृति ही उस दिन का विशेष कार्यक्रम रहता है। चातुर्मास समाप्त होते ही सभी साधु-साध्वियां बिना किसी प्रतीक्षा के उस दिशा की ओर चल पड़ते हैं, जहां आचार्य प्रवास करते हैं। वहां पहुंचकर वे आचार्य के मार्ग-दर्शन में संघीय पृष्ठभूमि पर विचार-विमर्श करते हैं। यदि कोई सदस्य नए परिप्रेक्ष्य में किसी मर्यादा में परिवर्तन की अपेक्षा महसूस करता है तो उसे अपनी बात रखने की स्वतंत्रता होती है। उस पर मुक्त भाव से विचार किया जाता है। और अंततः निष्कर्ष के रूप में आचार्य जिस विचार पर मुहर लगा देते हैं, वही सब के लिए सहर्ष स्वीकार्य हो जाता है। इस तरह मर्यादा महोत्सव तेरापंथ धर्मसंघ की समूहचारिता का एक प्राणकेंद्र बन गया है। ❑

आगम के आलोक में आचार्य भिक्षु

साध्वी निर्वाणश्री

18वीं सदी के संत आचार्य भिक्षु महान् तत्त्ववेत्ता थे। यद्यपि उन्होंने किसी विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी तथापि उनका तत्त्वज्ञान तलस्पर्शी था। मुनि जीवन की साधना का संकल्प स्वीकार करने के बाद वे आगमों के गहन अध्ययन में संलग्न हो गए। उन्हें लगा कि उनके आचार-विचार और आगमों के तत्त्व निरूपण में एकरूपता नहीं है। वे अपनी जिज्ञासाएं लेकर स्थानकवासी संप्रदाय के आचार्य पूज्य रघुनाथ जी के चरणों में उपस्थित हुए। रघुनाथजी ने उनकी जिज्ञासाओं के समाधान में कहा–'भीखण! तू जिस कठोर आचार के परिपालन की बात कह रहा है उसकी अनुपालना वर्तमान में असंभव जैसी है। यह पंचम काल है।' संतोषजनक समाधान न मिलने पर संत भीखण उस परंपरा से अलग हो गए। वे अपने साथियों के साथ स्वतंत्र रूप से साधना करने लगे। उनकी वह क्रांति तेरापंथ के नाम से प्रख्यात हुई।

आगम के आलोक में अपने तत्त्व चिंतन को निरूपित करते हुए आचार्य भिक्षु ने अनेक प्रस्थापनाएं कीं। उनकी मुख्य-मुख्य प्रस्थापनाएं इस प्रकार है–

- शुद्ध साधन के द्वारा ही शुद्ध साध्य की प्राप्ति संभव है। अशुद्ध साधन से कभी शुद्ध साध्य प्राप्य नहीं है। बंधन-मुक्ति के साध्य का साधन ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ही है।
- धर्म और अधर्म का मिश्रण नहीं होता। किसी क्रिया में आधा धर्म एवं आधा पाप ऐसा बंटवारा समीचीन नहीं है। ऐसा करने वाले अपने लक्ष्य से भ्रमित हैं।
- हिंसा हर स्थिति में हिंसा है। वह कभी अहिंसा/धर्म की कोटि में नहीं आ सकती। धर्म के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकती।
- पुण्य का बंध धार्मिक क्रिया के साथ होता है। उसका कभी स्वतंत्र बंधन नहीं होता। पुण्यबंध का स्वतंत्र निरूपण करने वाले भ्रम का ताना–बाना बुन रहे हैं।
- धर्म का आधार संप्रदाय नहीं, जीवन की पवित्रता है। अतः मिथ्यादृष्टि की सत्प्रवृत्ति भी भगवान की आज्ञा में है।
- संयममय जीवन ही सम्यक् एवं सार्थक जीवन है। असंयम न स्वयं का काम्य है और न ही दूसरों का। अतः संयम को पुष्ट करने का लक्ष्य हो।

तत्कालीन धर्मगुरु आचार्य भिक्षु की इन प्रस्थापनाओं से सहमत नहीं हुए। उनके साथ कभी कोई समझौता उन्हें मान्य नहीं था। वे प्रतिस्रोत में चलने का साहसिक निर्णय कर चुके थे।

विचार-शुद्धि के साथ आचार-शुद्धि का घोष बुलंद कर आचार्य भिक्षु ने नए युग का प्रवर्तन

किया। साधु संस्था में बढ़ते हुए शिथिलाचार पर अंकुश लगाकर उन्होंने आचारनिष्ठ और अनुशासननिष्ठ संघ की नींव रखी। उन्होंने ऐसी मर्यादाओं का निर्माण किया जो किसी भी संगठन की प्राणवत्ता का आधार बन सकती है। ढाई सौ वर्षों के अंतराल के बाद भी वे अपरिवर्तनीय जैसी हैं।

आचार्य भिक्षु अपने जीवन में आदर्शों की एक मीनार खड़ी कर सके क्योंकि उन्होंने अपनी साधना को आगम के सांचे में ढाला था। स्थानांग सूत्र के अनुसार वह साधक इस अनादि-अनंत संसार प्रवाह का पार पा लेता है जिसका जीवन तीन तत्त्वों से संवलित होता है। वे तत्त्व हैं—

1. अनिदानता, 2. सम्यक्‌दृष्टि, 3. योगवाहिता।

आचार्य भिक्षु ने अपनी साधना को कभी किसी भौतिक उपलब्धि के साथ नहीं जोड़ा। वे अपने जीवन के अंतिम समय तक इस दृष्टि से पूर्ण जागरूक थे। उन्हें अंतिम अवस्था में देख प्रिय शिष्य खेतसी जी ने निवेदन किया—'प्रभो! अब आप अतिशीघ्र स्वर्गीय सुखों में पहुंचनेवाले हैं।' आचार्य भिक्षु ने तत्काल टिप्पणी करते हुए कहा—'खेतसी! मैंने स्वर्ग को पाने के लिए साधुत्व की साधना नहीं की है। जीव ने अनंतबार ऐसे सुखों का अनुभव किया होगा। मैं मोक्ष-सुख का अभ्यर्थी हूं।' स्वर्ग और मोक्षसुख की कहीं कोई तुलना नहीं हो सकती। अनासक्ति के महान् साधक होने के कारण उन्होंने नाना प्रकार की प्रतिकूलताओं को बड़ी समता के साथ सहा। कष्ट-सहिष्णुता के क्षेत्र में वे एक आदर्श पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

मोक्ष-प्राप्ति की पहली अर्हता है सम्यक् दर्शन। आचार्य भिक्षु का सम्यक् दर्शन इतना परिपुष्ट था कि उन्होंने हर तत्त्व को सूक्ष्म रूप में निरूपित किया। दया के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा—साधु मारने-वाले की आत्मा को पाप से बचाने के लिए दया का रहस्य समझाता है। जीव उसमें स्वतः बच जाता है, पर किसी जीव के बचने और न बचने के साथ दया को नहीं तोला जा सकता। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

जीव जीवे ते दया नहीं, मरे ते हिंसा मत जाण।
मारणवाळा ने हिंसा कही, नहीं मारे ते तो दया गुणखाण।।

आचार्य भिक्षु ने इसे साहूकार और उसके पुत्रों के दृष्टांत से सुस्पष्ट करते हुए कहा—किसी सेठ के दो पुत्रों में से एक ऊंची ब्याज दर पर ऋण लेता हो और दूसरा उसे चुकाता हो तो सेठ को कौन-सा पुत्र अच्छा लगेगा? निश्चित है कि ऋण चुकाने वाला ही अच्छा लगेगा। इसी प्रकार साधु को भी दया का आचरण करने वाला ही अच्छा लगेगा।

'आचार्य भिक्षु की यह सम्यक् दृष्टि उनके तत्त्व निरूपण के हर पहलू पर दृष्टिगत होती है। भयंकर विरोधों में कालजयी कृतियों की रचना उनकी विलक्षण स्थितप्रज्ञता की संसूचक है।

आचार्य भिक्षु विशिष्ट योग साधक थे। जप, स्वाध्याय, ध्यान, आतापना आदि के द्वारा उन्होंने अपने आपको भावित किया था। उनकी योगवाहिता का एक अनुपम उदाहरण है कि सत्तर वर्ष की प्रौढ़वय में भी वे खड़े-खड़े सविधि प्रतिक्रमण करते थे। जब किसी ने उनसे ऐसा न करने का निवेदन किया तो उन्होंने भविष्य को रेखांकित करते हुए कहा—'यदि मैं बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करूंगा तो आने वाली पीढ़ियां लेटे-लेटे प्रतिक्रमण करेंगी।' आचार्य भिक्षु का यह आकलन, सचमुच! विलक्षण था। उनकी हर क्रिया भावक्रिया से युक्त थी। उनकी योगवाहिता का एक अन्य प्रसंग है आचार्य रघुनाथ जी के साथ हुआ संवाद। जब आचार्य रघुनाथ जी ने कहा—'भीखण! इस समय दो घड़ी के लिए भी शुद्ध साधुपन नहीं पाला जा सकता, तो भिक्षु ने प्रत्युत्तर में कहा—गुरुदेव! दो घड़ी के लिए तो मैं श्वास रोककर भी रह सकता हूं। ऐसा वचन बिना विशिष्ट योगसाधना के क्या संभव हो सकता है?

महान् तत्त्ववेत्ता आचार्य भिक्षु के चरणों में न केवल हम अपनी श्रद्धा निवेदित करें, अपितु आगम के आलोक में अपने व्यक्तित्व को नई दिशा देने के लिए कृतसंकल्प हों। आगम ही हमारे लिए बेहतर दिशासूचक हैं। भगवान महावीर और उनकी वाणी ही आचार्य भिक्षु के लिए सर्वोच्च आस्था केन्द्र थी। ❑

तेरापंथ की आधारशिला: अनुशासन का धर्मचक्र

पदमचन्द पटावरी

लगभग नई शताब्दी से जैनधर्म और परंपरा में अपना अभिनव स्थान बनाए रखने में सफल और सक्षम तेरापंथ धर्मसंघ आज की तारीख में जैनधर्म की विशिष्ट पहचान बन गया है। इतने छोटे से कालखण्ड में फैली इसकी सुगन्ध का राज है धर्मसंघ का संविधान (मर्यादापत्र), जिसमें एक गुरु और एक विधान (अनुशासन) जैसे महान् सूत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है।

मर्यादा और अनुशासन यहां थोपा नहीं जाता बल्कि अंतस चिंतन से उसे स्वीकार किया जाता है। धर्मसंघ के आद्यप्रवर्तक परम श्रद्धेय आचार्यश्री भिक्षु द्वारा प्रणीत संघ में वैयक्तिक सोच और स्वतंत्र चिंतन के लिए पूर्ण अवकाश है, इसके साथ-साथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य द्वारा समानता पर आधारित व्यवस्थाओं का सांगोपांग सुयोग भी है। बोलचाल की भाषा में यह लोकतंत्र और एकतंत्र का ऐसा मिश्रण है जिसने धर्मसंघ को हिमालयी ऊंचाइयां और सागर-सी गहराइयां प्रदान की हैं। सुव्यवस्थाओं के लिए अनुशासन सदैव आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक स्वतंत्रता और समाजवाद (सामुदायिकता) के बीच समन्वय स्थापित करना जरूरी होता है। तेरापंथ धर्मसंघ इसी प्रयोग भूमि पर आधारित है और नित नए सोपान सर्जित कर रहा है।

अनुशासन के पक्ष में सतर्कता का होना भी जरूरी है। ऐसी सतर्कता, जो कठोरता और कोमलता दोनों से परे हो। कठोरता के पीछे कष्ट देने की नीति होती है जबकि सतर्कता के पीछे केवल व्यवस्था को बनाए रखने की नीति क्रियाशील होती है।

जब हम स्फूर्त आत्मानुशासन की बात करते हैं तब हमारे सामने कुछ सूत्र उपस्थित होते हैं, जिन्हें हम अनुशासन के पांच आधार भी कह सकते हैं। प्रस्तुत आलेख में उनकी संक्षिप्त चर्चा करना मुझे अभिप्रेत है–

1. व्यक्तिगत स्वतंत्रता और नियंत्रण की सीमा,
2. वैचारिक स्वतंत्रता और संयम की सीमा,
3. सहिष्णुता,
4. हृदय परिवर्तन में आस्था और स्वभाव परिवर्तन में आस्था,
5. अप्रतिबद्धता।

इन मानक तत्त्वों की रोशनी में तेरापंथ के अनुशासन पक्ष को बखूबी समझा जा सकता है। अनुशास्ता को इन पर पैनी दृष्टि टिकाए रखनी होती है। उनकी स्वयं की सोच भी प्रशस्त होती है। वे समन्वय और सीमांकन में स्वयं सतर्क रहते हैं। हृदय परिवर्तन यहां की मुख्य शर्त है और साधक को अप्रतिबद्धता के सांचे में ढालकर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जाती है।

अनुशासन के क्षेत्र में किसी को क्षमा नहीं किया जा सकता। यह अनुशास्ता का कर्तव्य होता है कि वे उलाहने और प्रोत्साहन की मिश्रित कार्य प्रणाली का प्रयोग करें ताकि अनुशासित व्यक्ति सदैव पुरस्कृत एवं उपकृत हो और अनुशासनहीनता दंडित हो और हो सके तो उन्हें पश्चात्ताप के साथ पुनः अनुशासित होने का अवसर प्राप्त हो सके। कहा तो यह भी गया है कि वह

अनुशासन नहीं, जो स्वतंत्रता की आत्महत्या करने के लिए विवश करे जबकि अनुशासन वह है, जिसके आगे स्वतंत्रता की लौ जलती रहे और पीछे-पीछे समता की अनुभूतियां चलती रहें।

तेरापंथ धर्मसंघ में अनुशासन का वटवृक्ष इसलिए गहरी जड़ें जमा सका, क्योंकि यहां की आचार्य परंपरा ने सदैव देश-काल की वर्तमान परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर अनुशासन के पक्ष का निर्वहन किया। वक्त आने पर उन्होंने मौन रहने अथवा क्षमा करने के सूत्र को भी स्वीकृति प्रदान की, जिससे आत्मानुशासन को जागृत किए जाने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जहां अनुशासन का प्रश्न है वहां समर्पण के साथ-साथ अहंकार और ममकार जैसी विसंगतियों का विसर्जन जरूरी होता है। यहां समर्पण भी सदैव एक तरफा इसलिए होता है, क्योंकि वह हृदय स्फूर्त होता है, उसके पीछे अगाध श्रद्धा होती है, संकल्पबद्धता भी शीर्ष पर रहती है। यहां यह बोध-पाठ दिया जाता है कि अहंकार का विसर्जन दूसरों के लिए नहीं, दूसरों के प्रति नहीं, वरन् स्वयं अपने लिए और अपनी विकास यात्रा के लिए ही होता है।

अहंकार और ममकार ऐसे तत्त्व है—जो संगठन में दरार डालते हैं। यदि संगठन चिरंजीवी बनाए रखना है तो इन बातों का विसर्जन करना ही होगा। तेरापंथ धर्मसंघ को मर्यादा और अनुशासन का प्रायोगिक पाठ पढ़ानेवाले चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने फरमाया था—'दम्भ और कदाग्रह मत करो, वाद विवाद मत करो, क्षमा धर्म की आराधना करो, इससे तुम्हें समाधि प्राप्त होगी।' आपश्री ने धर्मसंघ में गुरु को धुरी मानते हुए कहा—'सदैव गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करो, उसकी अखण्ड आराधना करो। ऐसा करने पर सुख को प्राप्त करोगे।' आज के तेरापंथ धर्मसंघ की ख्याति-प्रख्याति और प्रगति का राज भी यही है कि यहां अहंकार और ममकार को हतोत्साहित किया जाता है और संघ और संघपति के प्रति सर्वात्मना समर्पण की सीख दी जाती है।

जब आत्मानुशासन की चर्चा की जाती है तब दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह मर्यादा की मर्यादा है। इसे चेतना की जागरूकता भी कह सकते हैं। रूपक की भाषा में इसे इस रूप में विश्लेषित कर सकते हैं—

- ❑ मर्यादा की मर्यादा है—प्रज्ञा, तपस्या और साधना।
- ❑ मर्यादा की मर्यादा है—सौहार्द, शांति, सचाई और संतुलन।
- ❑ मर्यादा की मर्यादा है—अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और सापेक्षता।
- ❑ मर्यादा की मर्यादा है—बाहर की आवाज भीतर तक पहुंचे और भीतर की आवाज बाहर आए और आचरण को प्रभावित करे।

वस्तुतः मर्यादा और अनुशासन यहां आत्मानुशासन की सीमा में प्रविष्ट रहते हैं जिसके फलितार्थ निदर्शन किया गया है, इससे साधक स्वयं तो सधता ही है, इसके आलोक में उसके आचरण और व्यवहार भी सधते हैं, जिसका सीधा लाभ धर्मसंघ को प्राप्त होता है।

तेरापंथ के चतुर्थ अधिशास्ता श्रीमज्जयाचार्य ने अनुशासन और मर्यादा के सूत्रों को संघव्यापी स्वरूप देने के साथ-साथ इसे लोक जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए मर्यादा महोत्सव का शुभारंभ किया, जिसकी धुरी संघ-संविधान की वे धाराएं हैं, जिनका प्रणयन श्रद्धेय आचार्य भिक्षु ने किया और उत्तरवर्ती आचार्य परंपरा सतर्कता के साथ उसमें आवश्यक जोड़-घटाव करती रही है। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष इन धाराओं का पावन स्मरण किया जाता है। इनके प्रति सर्वात्मना समर्पण की एवं इनके प्रति विश्वसनीयता की शपथ ली जाती है।

यह उत्सव तेरापंथ की आधारशिला का प्रतीक है। अनुशासन का धर्मचक्र है जिसने तेरापंथ धर्मसंघ को सदैव प्राणवान बनाए रखने में मदद की है। हम आशा करते हैं कि आत्मानुशासन के ये दीप हर सदस्य के अंतर मन को प्रदीप्त करते रहें और इसके आलोक में चतुर्विध धर्मसंघ का हर सदस्य नई प्राण ऊर्जा प्राप्त कर आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त करे। ❑

विकास के आधार स्तंभ - मर्यादा और अनुशासन

डॉ. साध्वी कुन्दन रेखा

भारतीय संस्कृति की उज्ज्वलता और दीर्घजीविता का आधार है मर्यादा और अनुशासन! संसार की गतिशीलता नियमों पर अवलम्बित है। यही कारण है कि प्रकृति का कण-कण मर्यादित एवं अनुशासित है। समय पर ऋतुओं का आगमन, तटों के बीच बहती नदियों का उपकार, सूर्य और चंद्रमा की क्रमशः अगवानी करते दिन और रात मर्यादा और अनुशासन के महत्त्व को ही परिलक्षित करते है। बढ़ती आकांक्षाओं पर अंकुश एवं अन्तहीन इच्छाओं पर फुलस्टॉप इन्हीं गुणसूत्रों द्वारा ही संभव है। वृत्तियों का परिष्कार, सुन्दरतम व्यवस्थाओं युक्त व्यवहार और व्यवस्थित एवं संगठित समाज के निर्माण में यही सूत्र महामंत्र की तरह योगभूत है। जहां अनुशासन दिशासूचक यंत्र के माफिक जीवन दिशाओं का निर्धारण करता है, वहां सम्बन्धों में सौहार्द, पारस्परिक सामंजस्य तथा योग्यता के विकास में मर्यादाएं लाइट हाउस की तरह मार्ग प्रशस्त करती हैं। भटकाव से बचा लेती हैं।

वर्तमान युग इन बातों से अनभिज्ञ बना मर्यादाओं की उपेक्षा कर रहा है। अनुशासन के मायने बदल रहा है। स्वच्छंदता को स्वतंत्रता मानकर मूल्यों को खण्ड-खण्ड कर रहा है। पशु से भी निकृष्टतम व्यवहार इनसानों द्वारा सरेआम किया जा रहा है। अमानवीय अपराध हमारे घरों-परिवारों को भी निशाना बनाने में जुटे हैं। सत्ता, प्रतिष्ठा और अर्थ के आकर्षण में गुणवत्ता लुप्त होती जा रही है। वैचारिक-भावनात्मक प्रदूषण, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण में धर्म छूटता जा रहा है। छल-कपट और धोखे की प्रवृत्ति जीवन-व्यवहार में शुमार हो गई है। वासना और कामना का सामना निस्संकोच हो रहा है। अपहरण जैसी वारदातें व बलात्कार जैसे घिनौने कुकृत्य सद्चरित्र पर प्रश्नचिह्न बन कर विश्व कैनवस पर उभर रहे हैं। मर्यादाहीनता की परिचायक सामूहिक बलात्कार की जघन्य घटना ने सम्पूर्ण विश्व को झकझोर कर रख दिया है। व्यसन, फैशन और प्रदर्शन की मार से मनुष्य दिनोदिन निस्तेज बन रहा है। जिसका दुष्परिणाम स्वयं के साथ समाज और राष्ट्र की शक्ति का ह्रास हो रहा है।

मर्यादा और अनुशासनयुक्त जीवन का जन्मदाता भारत आज अपनी धरोहर को खो रहा है। प्रस्तुत उदाहरण साक्षी है—एक बार इंग्लैण्ड में एक भारतीय रात्रि के दो बजे पार्टी से वापस लौट रहा था। ड्राइवर ने चौराहे पर ट्रैफिक नियमानुसार गाड़ी को रोक दिया। गाड़ी में बैठे भारतीय ने टैक्सी चालक से कहा—अरे, भलेमानस! अभी यहां कोई देखने वाला नहीं, कोई सिक्योरिटी भी नहीं, ट्रैफिक नहीं, निकल क्यों नहीं जाता? दस मिनट का समय क्यों बर्बाद किया जाये? टैक्सी चालक ने कहा—महाशय! यह भारत नहीं है। 'आत्मानुशासन' कभी

इस देश के नागरिकों की पहचान थी। संवेदनशीलता, हृदय की कोमलता जीवंतता का प्रतीक थी। वहीं आज बड़ों-छोटों के बीच भेद रेखा, समर्पण और सम्मान जैसे उजले भाव छूटते जा रहे हैं। अनुशासन-मर्यादाहीनता ने सुसंस्कृति का गला घोटने में कसर नहीं छोड़ी है। ऐसे विषाक्त माहौल में आत्मचिंतन आवश्यक है। जैन वाङ्मय के अनुसार—

'वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य,
माहं परेहि दम्मंतो, बंणेहि वहेहि य।।

संयम और तप से आत्मा को अनुशासित करना श्रेष्ठ है। जो इस कला में निष्णात होता है, वह सभी स्थानों में पूज्य होता है। अनुशासन से आबद्ध और मर्यादा से सुसज्जित जीवन ही विकास का मूल मंत्र है। मनुष्य और पशु के बीच भेदरेखा का यही तो पैमाना है। यही वह शक्ति है, जो जीवन का दर्पण बनकर आत्मस्वरूप को प्रकट कर सकती है। इनके बिना जीवन नीरस है। तभी तो कहा है, जीवन का प्रकाश है अनुशासन। प्रेम और सहानुभूति का आकाश है अनुशासन। अनुशासनयुक्त मर्यादाएं अभेद्य कवच बन मनुष्यों को विषमताओं के प्रहार से बचाती हैं। क्या छोटा—सा अंकुश हाथी को वश में नहीं करता? जैसे छोटा—सा दीपक अंधेरे को मिटा सकता है, छोटा-सा मंत्र देव-शक्ति को अधीन बना सकता है, छोटा—सा रत्न करोड़ों में नवाजा जाता है, ठीक वैसे ही छोटी-छोटी मर्यादाएं जीवन की दिशा को बदल सकती हैं। अमृत जल की ये ही वे नन्ही-नन्ही बूंदें हैं, जो मूर्च्छित मानवता में प्राणों का संचार कर देती है।

यह सत्य है कि जीवन के यात्रा—पथ में आने वाले दुर्गम रास्तों को सुगम बनाने के लिए मर्यादा और अनुशासन रूपी रथ का आलम्बन विश्वसनीय है। जिससे वैचारिक कटुता और विपरीत स्थितियों से उत्पन्न संघर्ष टिक नहीं सकते। इन कसौटियों पर कसकर ही साधकता निखरती है। अवांछनीय कार्यों को संयम के द्वारा ही रोका जा सकता है। असंयम रूप पत्थरों एवं कांटों की मार व चुभन से बचा जा सकता है। संयमी जीवन की निर्मलता और पवित्रता इन्हीं गुणों में निहित है। इसका प्रमाण है तेरापंथ धर्मसंघ।

तेरापंथ धर्मसंघ की प्राणवत्ता का राज है—सुदृढ़ मर्यादाएं एवं एक गुरु का अनुशासन। आचार्य भिक्षु ने अपनी अनुभव चेतना से युग को परख कर सत्य के अभीप्सु उपासकों को एक नई दृष्टि दी थी। आगमों को सत्य की कसौटी पर कसकर ही मर्यादाओं का सूत्रपात किया था। साधिक ढाई सौ वर्षों से यह संघ मर्यादा की नींव पर खड़ा, अनुशासन के परकोटे में सदा सुरक्षित है, मनोहारी बना हुआ है। अपनी सेवाभावना, समर्पण, विनम्रता और संगठन की सुदृढ़ता से पूरे विश्व को प्रतिबोध देता हुआ आत्मसाधकों के लिए साधना स्थल है, जहां पर निरन्तर विकास का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। यही कारण है वर्तमान वातावरण में भी तेरापंथ धर्मसंघ अनुशासन और मर्यादा से सुसज्जित, संयम की पराकाष्ठा के लिए एक रोल-मॉडल के रूप में दुनिया के सामने प्रस्तुत है।

गुरु आज्ञा इस संघ की विशेषता है। डोर से बधीं, उत्तुंग ऊंचाइयों का स्पर्श करती पतंग की तरह गुरु इंगित एवं निर्देशन में हर साधक की विकास यात्रा जारी है। विनम्रता से जुड़े हाथ, श्रद्धा और समर्पण से झुका सिर इस गण की पहचान है, जो साधना में जान भर देता है।

अनुशासन का सहवास मोक्ष-मन्दिर की पृष्ठ शाला है। जहां पर क्रोध विफल हो जाता है। समता रस के संचार से आत्मा पर लगी कर्मों की परतें पिघलने लगती हैं। दुःखों का उच्छेद हो जाता है। आचार्य श्री महाश्रमणजी इसके जीवंत उदाहरण हैं, जिन्होंने अपनी संयमित, नियमित और संतुलित जीवन शैली से स्वयं को उत्कृष्ट बनाया है एवं जन-जन को बोधपाठ दे रहे हैं। भैक्षव शासन की आन-बान-शान को शत-गुणित कर रहे हैं।

जैसे माली की इच्छा से सिंचित जल हर पौधे को समान रूप से सरसब्ज बना देता है, वैसे ही अनुशासन-युक्त मर्यादित जीवन बिना किसी शर्त के स्वयं का विकास करता है। समाज की सुदृढ़ता का परिचायक बन राष्ट्र प्रगति का कारण बनता है। अपेक्षा है मर्यादा की मूल्यवत्ता का अकंन हो और अनुशासन जीवन के कण-कण में परिस्पन्दित हो! ❑

आस्था हो तो भिक्षु जैसी

साध्वी राजीमती

कहते हैं कि हजार बाधाओं के बावजूद भी जो हिलती नहीं, वह आस्था होती है। यह आस्था संकल्प से आती है और भिक्षु का संकल्प था– किसी भी शर्त पर आत्मा को पाना। जीना है तो आत्मा के लिये, मरना है तो आत्मा के लिये और कहीं ठहरना है तो आत्मा के लिये। मेरी साधना का केन्द्र है आत्मा।

आत्मा तक जाने के लिये कुछ उपकरण चाहिये, उनमें प्रथम उपकरण होता है अपना 'स्वस्थ शरीर' अर्थात् साधना के लायक शरीर। हर व्यक्ति अपने जीवन में कुछ सामान्य सपने देखता है और कुछ विशेष रंगीन सपने। उन सपनों की क्रियान्विति का साधन है अपना स्वस्थ शरीर। आचार्य भिक्षु को स्वस्थ शरीर पहले से प्राप्त ही था और बाद में कई सुरक्षा कवच बना लिये गए–

1. खान-पान का संयम।
2. छोटी-बड़ी तपस्यायें।
3. आतापना की ऊर्जा।
4. श्रमनिष्ठ जीवन चर्या।
5. श्वास-संयम का प्रयोग।
6. और सतत यात्राएं।

अस्वस्थ शरीर उपकरण नहीं बनकर अधिकरण बन जाता है और सपनों की सफलता का निमित्त नहीं बनकर, असफलता का निमित्त बन जाता है।

आचार्य भिक्षु की सफलता का दूसरा उपकरण था–व्यक्ति को देखने की कला। व्यक्ति को दोनों दृष्टियों से देखना सीखें–भीतरी और बाहरी। परदा भी देखें और परदे के भीतर कौन है, कैसा है? यह भी देखें। परंतु यह कला हर एक को प्राप्त नहीं होती। जिसे यह कला प्राप्त होती है वह न स्वयं से अनजान रहता है और न दूसरे के साथ अन्याय करता है। जिन्हें दोनों दृष्टियों से एक साथ देखना आता है, वे ही सरस जीवन जी सकते हैं। सकारात्मक व्यवहार कर सकते हैं। सत्य की गहराई पा सकते हैं। फल की पहचान बिना अंगुलियों का स्पर्श हुए नहीं हो सकती कि वह कच्चा है या पक्का? इसके लिये व्यक्ति बार-बार फल को उलट-पुलट कर

देखता है, जबकि आंख तो अपना निर्णय एकबार में ही दे देती है। यही बात व्यक्ति की पहचान में लागू होती है। जिसको अन्तर दृष्टि प्राप्त है, वह हर व्यक्ति की बाहरी छाया और भीतरी माया दोनों को जान लेता है।

आचार्य भिक्षु को दोनों दृष्टियां उपलब्ध थी। सही देखने से हर समस्या अपना समाधान भी पा लेती है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में दोनों के बीच .एकात्मता होनी चाहिये। दोनों में जब एकात्मता—परस्पर एक-दूसरे की पीड़ा/अपेक्षा समझने की वृत्ति होती है तब समस्या स्वयं समाहित हो जाती है। यदि भीतर से देखना नहीं आया तो कभी आप विपदा या उलझन में पड़ सकते हैं। फिर मित्रता, परस्परता खंडित हो सकती है, परंतु आचार्य भिक्षु जब अलग हुए तब उनके साथ भीड़ नहीं थी, कुछ ही दिनों में निजता का विस्तार हुआ। सचाई ने अपनी गर्दन उठाई कि व्यवहार सकारात्मक बन गया।

दिल से दिल की बात—जो लोग इस विधि से बात करना नहीं जानते वे अनियंत्रण वाले होते हैं। उनसे न चाहते हुए भी कुछ-ऐसे काम हो जाते हैं जो संत, सज्जन लोग नहीं कर सकते। व्यक्ति की पहचान होती है उसके विचारों से। भाषा किसी की हो सकती है। व्याख्या कोई कर सकता है परन्तु आत्मा तो उसी की होती है।

हम कितने हैं अपने गुरु के विचारों के साथ एकात्म यह निम्न सूत्रों को पढ़कर जानें, सोचें—

आचार्य भिक्षु ने कभी अपने साथ संघर्ष नहीं किया। यदि वे स्वयं के साथ लड़ते, अपने विचारों और भूलों से परेशान होते तो वे असत्य से कब लड़ते? सत्य का नया दीप कब जलाते? मैं बहुत बार सोचती हूं कि 'गुण ओलख सुमिरण कियां ..... वे कौन से गुण थे जिन्हें जान लेने से अप्रत्याशित काम भी सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर कल्याण मंदिर—अन्तःस्तल स्पर्श में आचार्य महाप्रज्ञ ने दिया है—

1. आचार्य भिक्षु में संकल्प था—मर पूरा देस्यां आतमा रा कारज सारस्यां।
2. साधना—आतापना, एकांतर तप की ऊर्जा थी।
3. सहिष्णुता—हर कार्य में सकारात्मक रहते थे।
4. उपशांत कषाय—चुनौतियों ने हमला किया पर सिद्धांत की तीखी तलवार से और मुस्कान के चाकू से काटते गये। ये चार गुण उनके चरित्र में परिव्याप्त थे।

किसी भी व्यक्ति को समझने के लिये उसके विचारों को समझना और व्यवहार को देखना जरूरी है। मेरे भीतर भी आकर्षण है आचार्य भिक्षु की तरह एक भीतरी पहचान के साथ जीने का। मैं भी अपनी पहचान करती रहूं ताकि उस तैराक-नौका के साथ मैं भी पार हो सकूं।

साधु एक शब्द है जिसके साथ अनेक पवित्र आस्थाएं जुड़ी होती हैं। इसके आगे और आस-पास चलने वाला दूसरा शब्द है संत। जब पवित्रता सघन होकर प्रगट होने लग जाती है तब वह संत बन जाता है। संतत्व को पा लेता है। साधु पवित्र जीवन का प्रारंभ है और संत होना उसका अंत है। निश्चय है। पूर्णता है। योगी संत से इसलिये आगे होता है कि, उसकी तीसरी आंख खुली होती है। फिर वह बाहर का बहुत कुछ देखने लग जाता है।

फकीरों की दुनिया में शब्द, परिभाषाएं और प्रूफ नहीं होते। वहां होती है केवल प्रकृति, सचाई और सौन्दर्य। रूपान्तरण भी नहीं कि मकान की आसक्ति कुटिया बन जाये। साधु रूपान्तरण करता है, किंतु संत वह नहीं करता। संत सत्य सरिता की धार के साथ चलना, बहना और ठहरना तीनों जानता है। तीनों को (आदि, मध्य और अन्त में) जी भी लेता है। यहां पहुंचने के बाद साधना का कोई नाम नहीं होता। मुक्तता के लिये कोई प्रतिबद्धता नहीं होती, वह किसी भी देश, वेश में हो सकती है। संत सचाई की व्याख्या चतुराई, पढ़ाई से नहीं करता। वह केवल अनुभव से करता है।

एक दिन एक संत की कुटिया पर एक धनी आया। उसने अपना तर्क रखते हुए कहा—'महात्मन्! धन के बिना जीवन नहीं चलता, उसकी कदम-कदम पर आवश्यकता है, किंतु धर्म के बिना जीवन का कोई काम नहीं रुकता फिर आए धन की निंदा क्यों करते हो?'

संत ने कहा–'अभी रात हो गई है। आप सो जाइये।' धनी कुटिया में गया, वहां एक दीपक जल रहा था, उसने पूछा–'यह दीपक क्यों जल रहा है?' 'अंधेरा है।'–संत ने कहा। धनी–'कब तक जलेगा यह?''जब तक अंधेरा रहेगा।'–संत ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया। यह सुनते ही धनी व्यक्ति ने संत से कहा–'मेरे प्रश्न का समाधान हो गया है। जब तक पाप रहेगा तब तक धर्म की कदम-कदम पर जरूरत रहेगी। भीतर का अंधकार ही तो अधर्म है। उसे धर्म का प्रकाश ही तो दूर कर सकता है।'

इस कहानी से बोध-पाठ सीखें कि जहां सन्तता है वहां पवित्रता है और जहां पवित्रता है वहां सन्तता है। बाहर भीतर एक-सी साधना का नाम है भिक्षु। इस वर्ष हम भिक्षु सी लक्ष्यनिष्ठा, आचार निष्ठा और संकल्प निष्ठा को जीने का संकल्प दोहराएं और अपनी आत्मा के आस-पास रहने का अभ्यास करते रहें।

आचार्य भिक्षु जैसे महापुरुषों को पढ़ने और जानने के बाद कुछ चिन्तन क्षणिकाएं जागती हैं जिन पर हमें चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए।

चिन्तन क्षणिकाएं–

- सफलता से अधिक सुखी और विफलता से अधिक दुःखी होना कायरता है।
- हम जिस गुण को देखते हैं उसका मुंह हमारी तरफ हो जाता है।
- अच्छे व्यवहार के लिये आवश्यक है अच्छे आत्म-संयम की ।
- किसी को दोषी ठहराने में रस न लेना अहिंसा की सही समझ है।
- अपने स्वभाव का जितना असर होता है उतना किसी अन्य बात का नहीं।
- आलोचक को शुभचिंतक मानना चाहिये, परंतु आलोचक के पास आधार स्पष्ट होने चाहिये।
- विनम्र व्यक्ति दीखता है जबकि अहंकारी दिखाता है।
- छिपी शक्तियों के जागरण की अभिप्रेरणा प्रमोद भावना है।
- पिछली शत्रुता के कारण वर्तमान को खराब मत करो।
- आलोचना धैर्य से सुनिये जैसे कोई वरदान दे रहा हो।
- नियंत्रण का सामर्थ्य आता है लक्ष्य ऊंचा होने पर।
- संकल्प सबके पास है पर मन को जगाना किसी-किसी को आता है।
- मन और मस्तिष्क को सही दिशा व्यक्ति स्वयं ही देता है। ❑

जब कोई व्यक्ति ऑफिस के भीतरी कक्ष से आपके कार्ड पर यह लिख भेजे कि वह व्यस्त है तो आप कार्ड की पीठ पर लिखिए–'यही तो कारण है कि मैं आपसे मिलना चाहता हूं। मेरे पास भी बेकार लोगों के साथ बर्बाद करने का वक्त नहीं है।' पुनश्च, निश्चित वह आपसे मिलेगा।

जब कोई कहे कि वह आपके प्रस्ताव से सहमत नहीं है तो मुस्कुराते हुए कहिए–'मैं जानता हूं कि आप सहमत नहीं हैं। यही तो कारण है कि मैं इतनी दूर से आपके दर्शनार्थ आया हूं। यदि आपकी इसमें दिलचस्पी होती तो फिर आप मुझसे मिलने आते।'

सर्वे संतु निरामया

ललित गर्ग

आज हमारी पृथ्वी पर और समूचे मानव समाज पर कई खतरे मंडरा रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है। हवा में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ने से तापमान अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। मौसम बदल रहे हैं। कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ का प्रकोप है। पीने का पानी दुर्लभ होता जा रहा है। मनुष्य आपस में लड़ने-मरने पर उतारू है। हिंसा अपनी चरम पराकाष्ठा पर है। हमने इतने बम बना लिए हैं कि पूरी-की-पूरी पृथ्वी को एक बार नहीं, कई-कई बार पूरी तरह से भस्म किया जा सकता है। इन खतरों के बावजूद हम सुरक्षित हैं और हमारा आत्म-विश्वास जिंदा है तो इसका कारण यह है कि कहीं-न-कहीं आज भी मर्यादाएं जीवंत है और उन्हीं के कारण मानव जीवन सुरक्षित एवं संरक्षित है। प्रकृति का कण-कण हमें मर्यादा की बात सिखाता रहा है। मानव अनुशासन और मर्यादा को अपनाकर अपने जीवन को अक्षुण्ण रख पाएगा। मर्यादा से ही समस्याओं का निबटारा संभव है।

पथभ्रान्त पथिक की मर्यादा ही सच्चा पथदर्शन बनेगी। प्राणी जगत् का नेतृत्व आज भी मनुष्य जाति के हाथों में है। उसके पास दूर की सोचने वाला दिमाग है। दिमाग में जहां वैज्ञानिक सूझ-बूझ है वहीं आध्यात्मिक ऊर्जा भी है, मर्यादाओं के बांध हैं। आदर्श मनुष्य वही है जो संकट के समय धैर्य और साहस से काम लें। पराक्रम और पुरुषार्थ की बात सोचें, विश्वास बनाए रखें, निराश न हों। कठिनाइयों से लड़ने की लालसा, अपनी शक्तियों पर भरोसा और कुछ कर गुजरने की इच्छा उसी व्यक्ति में होती है, जो संयम और मर्यादाशील होता है। संयम और आत्मविश्वास जो संबल, सहारा और सद्भावना प्रदान करते हैं वह और किसी के विचारों से नहीं मिल सकती। कठिनाइयां तो हमारी प्रेरणा बनती हैं। कठिनाइयां न होती तो क्या कभी इतनी उन्नति की जा सकती थी। जीवन गुलाब के फूलों का विस्तार नहीं है, किन्तु कठिनाइयों वाले कार्य में कब, किसे आनन्द आता है? क्या कभी यह नहीं लगता कि वह कार्य करने में ज्यादा आनन्द आता है जो चुनौतीभरा होता है, जहां जोखिम होती है, जहां खतरे होते हैं, जहां कठिनाइयां होती हैं?

अगर जीवन में कठिनाइयां न हों, उलझाव न हों, दुश्वारियां न हों, विरोध न हों, आपत्तियों की कतार न हो, असफलताओं की श्रृंखला न हो तो क्या हम निष्क्रिय नहीं हो जाएंगे? क्या हमारी कार्यकुशलता कुंठित नहीं हो जाएंगी? क्या हमारी उपलब्धियों का आधार अनुभवविहीन नहीं हो जाएगा? क्या हमारी खुशियां खोखली नहीं हो जाएंगी? अवश्य हो जाएंगी।

हमें मर्यादाओं का साथ, उसका दामन, उसकी डोर कभी नहीं छोड़नी चाहिए। मर्यादा

और संयम हमारे मन की रक्तवाहिनी है, उसमें संचारित होने वाली गति है। यही हमारे भावों को, विचारों को, सोच को, समझ को, ज्ञान को, बुद्धि को, विवेक को प्रस्फुटित, पल्लवित एवं पुष्पित रखने के साथ-साथ नियंत्रित रखती है। अपने भीतर झांकना और दूसरों के भीतर झांकना और दोनों स्थितियों के भीतर छिपी हुई मौलिक समानता का अनुभव करना जीवन की सबसे बड़ी मर्यादा है।

लोकतंत्र का युग है, बहुमत का जमाना है। चाहे सरकार हो, समाज हो, परिवार हो या फिर पास-पड़ोस का परिवेश। संख्या बाहुल्य अपना प्रभाव प्रदर्शित कर रहा है। मर्यादाओं के बांध टूट रहे हैं, झूठे समूह द्वारा सच्चे को भी झूठा साबित करने में लगी हुई मानसिकता कितनी विकृत हो चुकी है, मापना नामुमकिन है। घर-परिवार, समाज और राष्ट्र के मुखिया के चिन्तन और उसके अनुभव को भी शंका की दृष्टि से देखा जा रहा है। आवश्यकता है, संवैधानिक मर्यादाओं के साथ नैतिक मर्यादाओं का भी एक प्रारूप बने, अनेकान्त दर्शन को समझने के साथ-साथ विग्रह और पूर्वाग्रह पर भी कुछ प्रतिबंध लगे। आज संपूर्ण विश्व की अपेक्षा है एक स्वस्थ चिन्तन, आत्म मन्थन और समृद्ध विचार शैली प्रस्फुटित हो, मर्यादाओं का नया समीकरण बने। अतीत को पुष्ट, वर्तमान को सघन और भविष्य को सुरक्षित करे। शाश्वत मर्यादाओं का मूल्य समझते हुए सामयिक मर्यादाएं मार्गदर्शन करें।

वनस्पति जगत् और पर्यावरण मानव जीवन को प्राणवायु प्रदान करते हैं। उनका दोहन भी मानवरूपी बाहुबलों द्वारा किया जा रहा है, जो वनस्पति जगत् ऑक्सीजन प्रदाता है, फल-फूल और पत्तों के द्वारा आश्रय प्रदान करता है, उसी के साथ छेड़छाड़, कटाई-छंटाई और विनाश की क्रीड़ा! नदी-नालों का प्रवाह मोड़ने की कुचेष्टा, प्रदूषण का विकराल रूप! ऐसा लगता है प्रकृति के साथ खिलवाड़ करते हुए अपने स्वार्थ की पूर्ति करना यानी उनकी अपनी मर्यादाओं को भी प्रभावित करने का दुःसाहस। परिणाम भोगते भी हैं अतिवृष्टि और अनावृष्टि के रूप में। सूखे और अकाल की चपेट से। भूकंप के थपेड़ों से जीवन-चर्या को चक्रव्यूह में फंसाकर। गर्मियों में सूर्य का प्रचण्ड प्रकोप और शीत में ठिठुरती कड़ाके की ठंड, ओजोन परत की बढ़ती दरार से प्रभावित होती आम जिंदगी। यही कहा जा सकता है कि प्राकृतिक मर्यादाओं को अमर्यादित करने का साक्षात् परिणाम है।

आज अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता का खुला नृत्य चल रहा है। आदमी कुल, धर्म, समाज या राष्ट्र के विधान को ताक पर रखकर इच्छानुरूप जीवन जीने का हिमायती हो रहा है। स्वतंत्रता और स्वेच्छाचारिता के इस युग में मर्यादा शब्द बेमानी लग सकता है। मर्यादा पालन की बात अठारहवीं सदी की बात-सी प्रतीत हो सकती है, पर मर्यादा का मूल्य किसी भी युग में कम नहीं आंका जा सकता। इक्कीसवीं सदी में यदि यथार्थतः गति करनी है तो मर्यादा में रहना सीखना बहुत जरूरी है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखाएं लांघी गईं, विनाशरूपी रावण ने उत्कर्षरूपी सीता का अपहरण कर लिया। धरती, अंबर, समंदर, चांद, सितारे सब कोई सीमा में रहकर ही सुशोभित हो रहे हैं। गगन की सीमा लांघने वाला सितारा पत्थर मात्र बनकर रह जाता है। तटों को तोड़कर बहने वाली सरिता जीवनदायिनी से विनाशिनी बन जाती है।

मर्यादाओं का जब-जब उल्लंघन हुआ है विनाश ही विनाश देखने को मिला है। मनुष्य जीवन प्रारंभ से ही मर्यादाओं से ही शोभित और अलंकृत होता रहा है, लेकिन मर्यादा रूपी जीवन में बड़े अवरोधक भी हैं— क्रोध, अहंकार, माया और लोभ। एक बहुत बड़ा अवरोधक है क्रोध। क्रोध की अग्नि में व्यक्ति अच्छे-बुरे का विवेक खो देता है। मानवीय संवेदना का स्रोत सूख कर क्रूरता से रंग जाता है, पर वह सोचता यही है कि क्रोध मेरी सत्ता और शक्ति का साक्षी है। परिस्थितियों से समझौता न करने की प्रेरणा है। क्रोध नहीं तो पुरुषत्व कैसा? अन्याय और शोषण को सहना नहीं, समाप्त करना है तो फिर खून इतना ठंडा क्यों? समान अधिकार और न्याय की बात गौण होती है। उसे चाहिए सिर्फ स्वयं की सुरक्षा।

मर्यादा रूपी जीवन का दूसरा बड़ा कारण

है—अहंकार। अहंकार का अजगर जब सिर उठाकर फुफकारता है तब व्यक्ति यह सोच भी नहीं पाता कि यह मान, विनय, श्रुत और शील का नाशक है। स्वयं को स्थापित कर औरों को बौनापन देने वाला प्रदूषण है, किन्तु व्यक्ति इस मान को भी अपने अस्तित्व की सुरक्षा का प्रहरी मानता है। उसे स्वयं को झुकाकर औरों की गुलामी में विकास की संभावनाएं नहीं दीखती, क्योंकि बिना मान के अहं को पोषण कौन दे? वह सोच भी नहीं सकता कि मैं जो सोचता हूं सिर्फ वही सच नहीं है, कुछ और भी सच हो सकता है।

मर्यादाशील मनुष्य के निर्माण की एक बाधा है—माया। माया के इंद्रजाल में फंस जब मन भ्रमित होता है तो उसे सूखा तपता रेगिस्तान भी झील-सा नजर आता है। माया व्यक्ति की भाषा, कर्म और चिन्तन में जमीं आसमां की दूरियां ला देती है। इसे भी व्यक्ति अपना चातुर्य समझता है। माया में लिपटा कौशल उसके घिनौने मन को भी छुपा लेता है। मायावी दुनिया की आंखों में धूल झोंककर प्राप्त सत्ता, ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा को अपने ईमान और समझदारी का सबूत मानता है।

मर्यादा रूपी जीवन का एक दुश्मन है—लोभ। लोभ का जादुई आकर्षण मन को यूं बांधता है कि बंधा हुआ भी वह खुला—खुला—सा लगता है। सब कुछ पा लेने की तृष्णा उसे पाप की सीमा तक ले जाती है। लोभ की गणित के फार्मूले उसके स्वयं द्वारा बनाए हुए होते हैं। वह मानता है कि आज जीने के लिए आदमी के पास यदि धन, ऐश्वर्य एवं संपन्नता नहीं तो उसका मूल्य ही क्या?

पैसे से इनसान की पहचान होती है। इसलिए वह अपनी इच्छाओं की संपूर्ति में जीवन के उन क्षणों को भी दावं पर लगा देता है, जो उसके निजी अमन चैन के होते हैं।

यूनान का बादशाह सिकन्दर बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसने अनेक देश जीते और अपार धन-संपत्ति इकट्ठी की। जीवन का अंतिम क्षण आया तो उसकी आंखें खुल गईं। उसने देखा कि वह अकेला ही जा रहा है। जो कुछ उसने बटोरा था, सब यहां छूट रहा है। तब उसने अपने दीवान को बुलाया और कहा कि मैं मर जाऊं और मुझे दफन करने ले जाएं तो मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर कर देना।

यही जीवन की सचाई है। आदमी कितनी आपाधापी करता है, लेकिन अंत समय में कुछ भी उसके साथ नहीं जाता, यहां तक कि उसका कुटुम्ब-कबीला भी यहीं रह जाता है। इस स्थिति की अनुभूति मर्यादा की आधारशिला है।

समझ लेना चाहिए कि मर्यादा का अर्थ सब कुछ त्याग देना नहीं है। यह हर किसी के लिए संभव नहीं है। आखिर जीवन-यापन के लिए अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। जो संसार को छोड़कर निवृत्ति के मार्ग पर चलते हैं, उन्हें भी भोजन चाहिए, और भी कुछ चीजें चाहिए। वास्तव में मर्यादा मन की एक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति संसार में रहते हुए भी उसके माया—जाल में फंसता नहीं। सारे बंधनों के बीच वैसे ही रहता है, जैसे कीचड़ के बीच कमल रहता है। मर्यादाशील व्यक्ति के मन पर कोई भार या तनाव नहीं होता, वह सांस की तरह सहज और फूल की तरह हलका होता है। तभी वह उस सुख का आनन्द लेता है, जो मानव-जीवन के लिए अपेक्षित है।

मर्यादा के साथ सादगी और सात्त्विकता जुड़ी हुई है। जिसके जीवन में आडम्बर है, वह कभी मर्यादा और संयम का अनुभव नहीं कर सकता, और जिसमें सात्त्विकता नहीं है, वह कभी सुखी नहीं रह सकता। उसके अंतर में ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, बेईमानी आदि का दूषित चक्र हर पल चलता रहता है और वह अपने ही बुने जाल में जकड़ा रहता है। सुख उसके लिए मृग-मरीचिका के समान होता है।

मर्यादा में ही सारा सुख समाया हुआ है। सब जानते हैं कि हम जैसा बोते हैं, वैसा ही काटते हैं। उच्छृंखलता के बीज बोकर मर्यादा की फसल नहीं काटी जा सकती। जो मर्यादा का बीज बोता है, वह सुख से मालामाल हो जाता है। आज हर आदमी सुख की खोज में खड़ा है। और उस थके-हारे इनसान को प्रतिबोध

देते हुए खलील जिब्रान को पढ़ना अच्छा लगता है, जो लिखते हैं—'मैं भी कहता हूं कि जीवन सचमुच! अंधकारमय है, यदि आकांक्षा न हो। सारी आकांक्षाएं अंधी हैं यदि ज्ञान न हो। सारा ज्ञान व्यर्थ है यदि कर्म का ज्ञान न हो। जब तुम प्रेम से प्रेरित होकर कर्म करते हो तब तुम स्वयं से बंधते हो, एक-दूसरे से बंधते हो, भगवान से बंधते हो।'

यहां प्रेम का अर्थ संयम है, मर्यादा है। इसी समय और मर्यादा के बल पर हम वह सब कर सकते हैं जो हम करवाना चाहते हैं। मैं अच्छा आदमी तभी बन सकता हूं यदि मुझमें अपने आप पर नियंत्रण करने की क्षमता है। दृढ़ निश्चय है। साहसी निर्णायक क्षमता है। आशावादी दृष्टिकोण है। सकारात्मक सोच है। उत्साही मन है। ऊर्जस्वल पराक्रम है। मैं दुःख में से सुख खोज लेना चाहता हूं और ऐसा सोचते हुए, संकल्पित होते सचमुच! सुख खोज लेता हूं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने सटीक कहा है—'मर्यादा जागतिक नियम है। अपनी मर्यादा हो तो बाहरी मर्यादा नहीं आती। बाहरी मर्यादा आती है तो उसका अर्थ है कि अपनी मर्यादा नहीं है।' अपनी मर्यादा न होने से ही जीवन एक जटिल पहेली बना हुआ है। ऐसा नहीं है कि आज का आदमी समय के साथ चलना न चाहे, बुरे आचरण छोड़कर अच्छी जिंदगी का सपना न देखें, बुराई को बुराई समझने के लिए तैयार न हो। सोचना यह है कि हम गहरे में जमे संस्कारों को कैसे सुधारें? जड़ तक कैसे पहुंचे? वृक्ष कभी इस वियोग पर शोक नहीं करता। उसके पास जड़ की सत्ता सुरक्षित है जिससे वसंत आने पर पुनः वृक्ष फूल-पत्तों से लहलहा उठता है। आज हमें भी संकल्पों को मुकाम तक पहुंचाने के लिए मर्यादाओं को स्वयं में सहेजना होगा, बाहरी अवधारणाओं को बदलना होगा, जीने की दिशा को मोड़ देना होगा। तभी मर्यादाओं के बंधन मजबूत होंगे और निर्माण का रास्ता साफ-सुथरा बन पाएगा।

भारतीय संस्कृति के कुछ सूत्र उपलब्ध है—'बहुजन हिताय' और 'सर्वे भवंतु सुखिनः।' हमें देखना होगा कि इन सदिच्छाओं के मार्ग में कौन से अवरोध रहे हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। यह तो तय है कि अंतिम लक्ष्य 'सर्वे भवंतु सुखिनः' ही होना चाहिए। वही भविष्य वांछित है, जब 'सर्वे संतु निरामया' यानी सबको आनंद और शांति प्राप्त हो। परन्तु लोगों के हितों में टकराहट है और लोग अपने-अपने हितों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों को न केवल नजरंदाज करते हैं, उसे नकारते भी हैं। ऐसे में भी तत्काल सबके हित की बात की जा सकती है—जैसे सभी मानवों, सभी जीवों का यानी मानवता और जीवन का सम्मान किया जाए और वृहत्तम परिप्रेक्ष्य यही रखा जाए कि वही संयम एवं समतामूलक संसार सुरक्षित और सुंदर होगा, जिससे सभी जीवों के बीच सम्मानजनक, मर्यादित और संतुलित संबंध स्थापित हो। ❑

स्वर्ग कैसा होता है ?

एक युवक को रात के समय सपना आया। स्वप्न में उसने अपने दिवंगत मित्र को देखा। उनकी यह मुलाकात एक लम्बे अंतराल के बाद की मुलाकात थी। युवक मित्र को देख भावविह्वल हो गया। वह बोला-'कहां से आएं हो? सब कुछ ठीक तो है?' मित्र बोला-'तुमसे बिछुड़कर मैं स्वर्ग में चला गया था। इस समय वहां से आ रहा हूं। स्वर्ग का नाम सुन युवक कुछ अधिक ही उत्साहित हो गया। उसने स्वर्ग के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। वह पूछने लगा-'स्वर्ग कैसा होता है? वहां तुम लोग क्या करते हो? क्या खाते हो? कुछ तो बताओ।' युवक की बात सुन उसका मित्र बोला-'मैंने मरने के बाद जिस स्वर्ग को पाया और वहां जिस सुख का अनुभव किया, तुम उसे जीते जी पाना चाहते हो, यह कैसे हो सकता है, जो सत्य के बाद मिलने वाला है वह पहले कैसे मिल जाएगा। यह जीवन की विसंगति है। सामान्यतः मनुष्य विसंगतियों में जीने का आदी हो जाता है। किंतु यह निश्चित है कि अनुरूप पुरुषार्थ के बिना वांछित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मर्यादा का सुरक्षा कवच

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

सार्थक जीवन सभी जीना चाहते हैं। निरर्थक जीवन जीने की इच्छा शायद किसी-किसी की ही होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड का मानना है कि हर व्यक्ति की ख्वाहिश होती है कि वह कुछ ऐसा कर गुजरे जिससे उसकी सौरभ फैले, लोग उसका गुणानुवाद करते हुए थके नहीं, किन्तु दुर्भाग्य से उसके ही मस्तिष्क का दूसरा पक्ष उस पर प्रभावी हो जाता है और वह उसको दूर करने के लिए मजबूर हो जाता है जिससे चतुर्दिक उसकी निन्दा होती है। अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह मस्तिष्क के दूसरे पक्ष अर्थात् नकारात्मक चिन्तन को उस पर हावी न होने दे। विडम्बना इसी बात की है कि कोई अच्छे से अच्छा करने की इच्छा रखता है, मर्यादित जीवन जीने की अभिलाषा करता है, किन्तु थोड़ी सी विषम परिस्थितियों के कारण वह हताश और निराश होकर समझौता करते-करते अपने व्यक्तित्व की हानि कर लेता है।

प्रत्यक्षदर्शी घटना है, जब नव चयनित आई.ए.स., एस.डी.एम. बनकर अपने क्षेत्र में पहुंचा और नए खून के हिसाब से काम करना शुरू किया तो क्षेत्र में गलत धन्धे करने वाले सब उसके विरोधी हो गए। तहसील क्षेत्र में अतिक्रमण हटवाते हुए एक दिन पुलिस फोर्स के समक्ष आम जनता ने उसकी पिटाई कर दी और पुलिस बचाने का नाटक करती रही। उस घटना से उस अफसर ने निराश और मजबूर होकर समझौता नहीं किया। उसने अपनी सुरक्षा के लिए लाइसेन्सी रिवाल्वर लेकर फिर उसी उत्साह से अपनी ड्यूटी शुरू की, तो सभी गलत कार्य करने वालों को भूमिगत होना पड़ा और उस क्षेत्र में वह अफसर पूजा जाने लगा। किन्तु एक दूसरी घटना, जब एक विधायक ने एक पुलिस अफसर से नाराज होकर उसे एक थप्पड़ जड़ दिया, तो कुछ समय बाद एक कार्यक्रम में दोनों एक-दूसरे की तारीफ के पुल बांधते हुए दिखाई दिए।

ऐसी घटनाएं समाज के बीच में प्रायः देखने को मिलती हैं। ऐसे कुछ ही लोग होते हैं जिन्हें कभी कोई परिस्थिति झुका नहीं पाती और ऐसे व्यक्ति सार्थक और मर्यादित जीवन जीते हुए इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर नामांकित होते हैं। मर्यादा जीवन का श्रृंगार है, ऐसा कहना कोई अतिरंजनापूर्ण कथन नहीं होगा। जिस-जिस ने जीवन को मर्यादित किया प्रायः वे महान् बने। पाश्चात्य का एक महान् दार्शनिक जिसे इमानुअल काण्ट के नाम से जाना जाता है, उसकी अमरता के पीछे उसका मर्यादित जीवन माना जाता है। उसने अपने जीवन के एक-एक क्षण का उपयोग किया। उसने अपनी दिनचर्या को नियमित किया। कहते हैं कि घड़ी की सूई फेल हो सकती थी, किन्तु काण्ट की दिनचर्या कभी स्खलित नहीं हो सकती। सुबह जब वह घूमने के लिए निकलता तो लोग अपनी घड़ियां मिलाते थे। उसने न केवल मर्यादित जीवन जीया अपितु सभी को मर्यादित जीवन जीने के लिए 'सदिच्छा' (Goodwill) का मूल्यांकन भी दिया। सदिच्छा की व्याख्या करते हुए भी उसने स्पष्ट कहा कि सदिच्छा एक ऐसी इच्छा है जो किसी की इच्छा नहीं करती है। प्रायः काण्ट की सदिच्छा की तुलना गीता के निष्काम कर्म से की जाती है। इसी मर्यादित जीवन के कारण उसे जर्मनी के 'कोनिजबर्ग का ऋषि' भी कहा जाता है।

प्रकृति में भी मर्यादा के महत्त्व का आकलन किया जा सकता है। हवा जब मर्यादा में रहती है तो शीतलता प्रदान करती है और वही जब अमर्यादित होकर अन्धड़ का रूप ले लेती है तो तबाही मचा देती है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यां:' पृथ्वी माता है और हम उसके पुत्र हैं। जैसे हर मां अपनी संतान को धारण करती है वैसे माता पृथ्वी सबको धारण करती है, लेकिन यह भी तब होता है जब वह मर्यादित रहती है। अमर्यादित रूप में तो वह भी भूकम्प का रूप लेकर विनाश का खेल खेलती हैं। जल संरक्षिका नदियां भी नियमों में रहकर कितनी उपयोगी बनती हैं, किन्तु वही जब खूंखार रूप धारण करती हैं तो बाढ़ और अतिवृष्टि के रूप में तबाही का सशक्त हस्ताक्षर बनती हैं।

इतिहास साक्षी है कि जिन-जिनने मर्यादाओं का अतिक्रमण किया, वे कहीं के नहीं रहे। लंका नरेश रावण को भला कौन भूल सकता है? वह उत्कृष्ट विद्वान् और प्रतापी राजा था, किन्तु माता सीता के हरण जैसे उसके अमर्यादित कार्य ने न केवल उसे अपितु उसके समूचे वंश का विनाश कर दिया। उसके बारे में कहा जाता है—'इक लख पूत सवा लख नाती, तेही रावण के दीया न बाती' अर्थात् एक लख पुत्र, सवा लाख नाती वाले रावण का सर्वस्व स्वाहा हो गया। संस्कारित जीवन जीने वाला तथा राम की शरण में जाने वाला विभीषण ही एक मात्र बचा था। इसी प्रकार जब हम महाभारतकाल पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि अधर्म व अन्याय के पथ पर चलने वाले, मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले पुत्र व्यामोह में हित-अहित का ध्यान न रखने वाले हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र की अधोगति से सब परिचित हैं। भाई के हक को छीनने वाले दुर्योधन कृष्ण के समझाने पर भी 'सूच्याग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवः' अर्थात् हे केशव! सूई की नोक के बराबर जमीन भी बिना युद्ध नहीं दे सकता, का विनाश भला कौन नहीं जानता।

पराक्रमी, किन्तु अन्यायी शिशुपाल की 100 गालियों को नजरंदाज करने वाले कृष्ण ने 101वीं गाली पर कैसे मार गिराया, इसे भी प्रायः सभी जानते हैं। तात्पर्य यह है कि अधर्म, अन्याय, अनीति एवं अमर्यादित मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को कोई नहीं बचा सकता।

अगर व्यक्ति अपने जीवन को सम्यक् रूप से जीने के लिए कुछ नियम बना लेता है, अगर संस्थाएं अपने बनाए नियमों के आधार पर चलती हैं तथा देश अपने संविधान के अनुसार चलाया जाता है तो कहीं भी अव्यवस्था दृष्टिगोचर नहीं होगी। किन्तु यदि नियमों, उपनियमों एवं संविधान का उल्लंघन होता है तो व्यक्ति, संस्था, समाज एवं देश को कोई बचा नहीं सकता। हम गणतन्त्र दिवस मनाते हैं, संविधान के प्रति आस्था व्यक्त करते हैं तथा अपने संविधान पर गर्व भी करते हैं कि इसके माध्यम से ही देश का अच्छी तरह संचालन हो रहा है। प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जो संविधान सभा के अध्यक्ष भी थे, उन्होंने एक बार कहा था कि संविधान की हर धाराएं पथ प्रदर्शन की भूमिका का निर्वाह करती हैं, अतः इनके प्रति सभी देशवासियों की आस्था जरूरी है। अस्तु, मर्यादाओं के बिना जीवन उस बाड़ रहित खेत की तरह है जहां सुरक्षा नाम की कोई चीज नहीं है।

तेरापंथ धर्मसंघ के प्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु दूरदर्शी और क्रांतिकारी आचार्य थे, जिन्होंने धर्मसंघ के प्रवर्तन के साथ उसकी सुरक्षा के उपाय भी किए थे। तेरापंथ धर्मसंघ एक मर्यादित धर्मसंघ बना, क्योंकि भविष्यद्रष्टा आचार्य भिक्षु को यह बोध था कि सुरक्षा के उपाय के बिना कोई भी अस्तित्व दीर्घजीवी नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने संघ की मर्यादा का विशेष ध्यान रखा। संभवतः विश्व में तेरापंथ धर्मसंघ ही ऐसा विरल संघ है जहां मर्यादा का उत्सव मनाया जाता है। मर्यादा की उपयोगिता को देखते हुए मर्यादा महोत्सव को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाना चाहिए। यदि देश की सरकार इस प्रकार का निर्णय ले और लोगों को मर्यादित जीवन जीने के लिए प्रेरित करे तो आए दिन जो अन्याय, अनीति, अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार आदि की घटनाएं देश को शापित कर रही हैं, उनसे बचा जा सकता है और मर्यादा रूपी सुरक्षा कवच से जीवन को सुरक्षित रखा जा सकता है। ❑

जीवन का मौलिक आधार मर्यादा

डॉ. हीरालाल छाजेड़ (जैन)

स्व की सीमा का नाम मर्यादा है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में जिसकी महती आवश्यकता है। मर्यादा केवल मनुष्य के लिए ही नहीं होती, बल्कि प्रकृति के लिए भी उतनी ही आवश्यक है। जो प्रकृति सीमा में, मर्यादा में रहती है वह जीवन प्रदान करती है। स्व की सीमा का अतिक्रमण होने से प्रलयकारी बन विनाश का कारण बन जाती है। सागर की गहराई का उदाहरण दिया जाता है, किन्तु जब सागर में सुनामी का तांडव आता है सब सीमाएं तोड़कर प्रलय का रूप धारण कर लेता है। चारों तरफ विनाश ही विनाश परिलक्षित होता दिखाई देता है। नदियां मनुष्य जाति के लिए वरदान हैं, पर जब सीमाएं तोड़कर बहने लगती हैं तब बर्बादी का आलम बन जाती है। धारण करने वाली धरती अमर्यादित होने से राक्षसी-सी भयंकर बन जाती है। ज्योति देने वाली अग्नि प्रलयंकारी ज्वाला का रूप धारण कर लेती है। प्राणों का आधार पवन भी आवेश आने से प्राण हरण का कारण बन जाता है। यही स्थिति मर्यादा के टूटने पर, अनुशासन के टूटने पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की होती है। मर्यादा ही जगत् और जीवन के हर अंग को सुरक्षा प्रदान करती है। 'जहां मर्यादा हटी, वहां दुर्घटना घटी'।

केवल बाहर ही नहीं, भीतर झांक कर देखें—अपने शरीर के अन्दर की व्यवस्था व मर्यादा को जानें। हमारा विशाल शरीर एक छोटे से ब्रेन (मस्तिष्क) के अनुशासन बिना एक कदम एक क्षण भी चल नहीं सकता। सारे अंग-प्रत्यंग व अवयव का नियन्त्रण ब्रेन से होता है। अगर कोई अंग उसके आदेश की अवहेलना करता है तो निष्क्रिय व बेकार बन जाता है। जिसे डॉक्टरी भाषा में लकवा मारने की संज्ञा दी जाती है। हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया, कोशिकाएं ब्रेन के आदेश का पालन करती हैं, तभी शरीर स्वस्थ रहता है।

मर्यादा संगठन का मौलिक आधार है। व्यवस्था व मर्यादा के अभाव में सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्र में बुराइयां प्रवेश कर जाती हैं। उसका खतरनाक परिणाम सामने आता है। इतिहास जिसका साक्षी है। जब-जब मर्यादाएं टूटी हैं मानव जाति पर संकट के बादल गहराते नजर आते हैं, खून की होली खेली जाती है। हमारे देश में अनेक राजनीतिक संगठन काम करते हैं लेकिन अनुशासन व मर्यादा के अभाव में आपसी खींचातानी से ग्रस्त रहते हैं। यही हाल आज के युग में सामाजिक व धार्मिक संगठनों का भी कमोबेश हो रहा है।

घर-परिवार की स्थिति भी इससे अछूती नहीं है। संयुक्त परिवार के समय में परिवार के मुखिया का अनुशासन परिवार के सभी सदस्य स्वीकार करते थे, परिवार में मर्यादा के अनुरूप सारे कार्य संपन्न किए जाते थे। समय के साथ बदलाव आया, कोई किसी की बात मानने को राजी नहीं। मर्यादा विहीन आचरणों ने संयुक्त परिवार को तार-तार कर दिया और एकल परिवार में अनेक समस्याओं से आज का परिवार दुःखी बनता जा रहा है। स्वच्छन्दता के कारण अनेक अवगुण घर-परिवार पर हावी होते जा रहे हैं। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है।

आधुनिक युग के अमर्यादित काल में भी तेरापंथ धर्मसंघ का 'मर्यादा महोत्सव' विश्व में एक अजूबा है। आज हम, जब न केवल भारतीय परम्परा बल्कि विश्वस्तर पर नजर पसारते हैं तो अनेक प्रकार के पर्वों, त्योहारों, उत्सवों, महोत्सवों की समायोजना देखने को मिलती है जो अति उल्लासपूर्वक क्षणों में मनाए जाते हैं, किन्तु इन सबसे अलग हटकर एक ऐसा भी धार्मिक महोत्सव मनाया जाता है जिसको अलौकिक उपमा से उपमित किया जा सकता है और

वह अलौकिक महोत्सव है 'मर्यादा महोत्सव'। जिसे प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

मर्यादा अर्थात् संविधान। वैसे तो प्रत्येक संगठन, समाज, संघ व राष्ट्र का अपना संविधान होता है, परन्तु तेरापंथ धर्मसंघ के संविधान की विलक्षणता यह है कि यह मर्यादापत्र केवल पठन-पाठन तक सीमित नहीं वरन् हृदय से उसका संघ के सभी सदस्य पालन भी करते हैं, क्योंकि इसकी स्व मर्यादाएं किसी पर थोपी हुई नहीं, सहज आत्मसाक्षी से स्वीकृत होती हैं। इसी का परिणाम है कि करीब अढ़ाई शताब्दी पूर्व आचार्य भिक्षु ने अपने हाथों से जो लकीरें खींची, वे लकीरें आज भी इस धर्मसंघ की मर्यादाएं बनकर संघ को सुरक्षित रखे हुए है। तार्किक युग में इसकी अनुपालना अन्य संगठनों के लिए प्रेरणा बन सकती है। अगर किसी को मर्यादा और अनुशासन का जीवित स्वरूप देखना हो तो उसे 'तेरापंथ धर्मसंघ' में आकर देखना होगा। ❑

कहानी

जितेन्द्रिय : सच्चा सम्राट

जिसने अपने आपको जीत लिया वह जितेन्द्रिय है। अपने आपको जीतने वाला, किसी से पराजित नहीं होता। एक आत्म साधक संत, सम्राट से भी बड़ा है। संत किसी चाह का दास नहीं होता। वह विजय और पराजय के द्वन्द्व से परे रहता है।

चीन में एक महान् दार्शनिक संत थे—कन्फ्यूशियस। एक बार चीन का राजा वहां से गुजरा, जहां कन्फ्यूशियस विचार मग्न अपनी कुटिया में बैठा था। राजा को निकलते देखकर भी न तो वह अभिवादन के लिए उठा न ही कोई स्वागत की औपचारिकता की। यह बात सम्राट को अच्छी नहीं लगी, क्योंकि वह संत से मिलने का इच्छुक था। राजा न जाने क्या सोचकर कुटी के बाहर रुका और थोड़ी देर बाद कन्फ्यूशियस के पास जाकर बोला—तुम्हें पता है तुमसे मिलने कौन आया है? संत आत्मगौरव के साथ बोला—'मैं सिर्फ अपना पता रखता हूं कि मैं सम्राट हूं।'

फकीर के इस उत्तर से चीन के सम्राट को गुस्सा भी आया और आश्चर्य भी हुआ कि यह कितना निडर व्यक्ति है। राजा के अहं को जैसे किसी ने आसमान से धरती पर पटक दिया हो कि यह व्यक्ति सम्राट को सम्राट न कहकर स्वयं को सम्राट बोल रहा है। कितना घमण्डी है यह फकीर। तिलमिला कर सम्राट ने कहा—'तुम कैसे सम्राट हो? न तुम्हारे पास सेना है, न सेवक, न राजकोष के स्वामी हो न कोई हुकूमत। मुझे देखो—मेरे पास कितनी सेना है और कितनी सम्पत्ति का मालिक हूं। तुम कैसे फकीर हो कि अपने देश के सम्राट को भी नहीं जानते हो?

संत कन्फ्यूशियस, सम्राट की बात सुनकर हंस दिए। संत ने कहा—'सेना उसे चाहिए, जिसके शत्रु हों। मेरा कोई शत्रु नहीं है। सेवक उसे चाहिए जो पराधीन हो, आलसी हो, कमजोर हो। मैं सेवक का गुलाम नहीं स्वयं का मालिक हूं। जबकि हर मालिक आखिर में अपने सेवक का गुलाम होकर रह जाता है। रही बात राजकोष और सम्पत्ति की। यह उसे चाहिए जो गरीब हो, दरिद्र हो, आकांक्षाओं का भूखा हो। मेरे पास सन्तोष का अक्षय भण्डार है। अब आप ही बताएं कि असल में सम्राट कौन है? आप या मैं।

कन्फ्यूशियस ने थोड़ा अफसोस जाहिर करते हुए पुनः सम्राट से कहा—'हां इतना अवश्य है कि मैं अभी सम्पूर्ण सम्राट नहीं बन पाया हूं। मेरे शरीर पर अभी लंगोटी है, जो सम्राट बनने में बाधक बनी है। जिस दिन यह छूट जाएगी मैं सही में सम्राट बन जाऊंगा।

संत की इस अलौकिक वाणी को सुनकर सम्राट निरुत्तर हो गया। वह इस रहस्य को जान गया कि जिसने अपने आप को जीत लिया ऐसा जितेन्द्रिय ही सच्चा सम्राट है। राजा को यह बोध ज्ञान संत कन्फ्यूशियस के अमृत संदेश से प्राप्त हो गया। ❑

संगठन का मौलिक आधार-मर्यादा

साध्वीश्री कनकरेखा

स्व की सीमा का नाम है—मर्यादा। व्यक्तित्व व सामाजिक जीवन में जिसकी महती आवश्यकता है। मर्यादा केवल मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि प्रकृति के लिए भी आवश्यक है। हर व्यक्ति, हर वस्तु स्व की सीमा में होती है। सीमा का अतिक्रमण होने से यह प्रलयंकारी बन जाती है। जैसे—धारण करने वाली धरती अमर्यादित होने से राक्षसी-सी भयंकर बन जाती है। ज्योति देने वाली अग्नि प्रलयंकारी ज्वाला का रूप धारण कर लेती है। प्राण देने वाला पवनदेव भी आवेग आने से प्राणलेवा बन जाता है। जीवन देने वाली जलधारा तट को तोड़ते ही मृत्यु देने वाली बन जाती है। यही स्थिति मर्यादा के टूटने पर, अनुशासन के टूटने पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की होती है। मर्यादा जगत् और जीवन के हर अंग को सुरक्षा देती है।

मर्यादा संगठन का मौलिक आधार है। व्यवस्था व मर्यादा के अभाव में सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्र में बुराइयां प्रवेश पा लेती हैं। उसका खतरनाक परिणाम भी आता है। इतिहास जिसका साक्षी है। जब मर्यादाएं टूटी हैं, मानव जाति पर खतरे के बादल मंडराएं हैं, खून खराबा भी हुआ है। इसी यथार्थता को समझकर दीर्घदर्शी आचार्य भिक्षु ने अपनी सूझ-बूझ से अनुशासन व मर्यादा का नए सिरे से सूत्रपात किया। उसी की सुखद परिणति है—'तेरापंथ'।

आचार्य भिक्षु ने बड़ी परख के साथ जैन धर्म में स्थानकवासी संप्रदाय में मुनि दीक्षा स्वीकार की थी। वहां उन्हें साधना में संतोष नहीं मिला। तब उस संप्रदाय से अलग होना पड़ा, अनेक प्रकार के कष्ट व यातनाओं का सामना करना पड़ा। अन्न, जल व स्थान का अभाव होने पर भी वे घबराए नहीं। उनकी मनोभावना किसी नए पंथ की स्थापना करने की नहीं थी। वरन् वे चाहते थे कि 'आत्मा रा कारज सारस्यां मर पूरा देस्यां' अर्थात् मैं शुद्ध साधुपन का पालन कर आत्म कल्याण कर सकूं। उनके व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण था। वे अकेले थे, धीरे-धीरे एक कारवां हो गया। संयोगवश उसका नाम तेरापंथ हो गया।

आचार्य भिक्षु प्रज्ञापुरुष थे। उन्होंने तेरापंथ को जन्म ही नहीं बल्कि संविधान के द्वारा दीर्घ जीवन प्रदान किया। आचार्य भिक्षु ने संविधान के स्थान पर मर्यादा शब्द का चयन किया। संगठन को मजबूत बनाने के लिए आचार्य भिक्षु ने दूरदर्शी सूझ-बूझ से वि.सं. 1832 में पहला तथा अंतिम मर्यादापत्र लिखा—वि.सं.1859 में माघ शुक्ला 7 को। यह मर्यादापत्र केवल ऐतिहासिक ही नहीं, तेरापंथ धर्मसंघ का छत्र है; सुरक्षा कवच है तथा आधारभूत प्राणतत्त्व है।

आचार्य भिक्षु अनुभव प्रवण थे। उन्होंने न्याय, संविभाग और समभाव की वृद्धि तथा संघ की सुव्यवस्था के लिए अनेक प्रकार की मर्यादाएं रचीं। कुछ मर्यादाएं जैसे कि सर्व साधु-साध्वियां एक आचार्य की आज्ञा में रहे, विहार, चातुर्मास आचार्य की आज्ञा से करें। तेरापंथ संघ में आचार्य का सर्वोपरि स्थान है। उनकी

दृष्टि पैनी होती है, वे अतिशयधारी होते हैं। जिससे संघ की योग्यता छिपी नहीं रहती। वे संघ के प्रत्येक सदस्य के आंतरिक भाव व इच्छाओं को निकटता से समझते हैं, औचित्य के अनुसार आकार भी देते हैं। तेरापंथ की सफलता का रहस्य है—सेवा, श्रद्धा और समर्पण। आचार्य के आदेश व निर्देश को पूरा संघ हृदय से स्वीकार करता है। जो वर्तमान युग का आठवां अथवा महान् आश्चर्य कहा जा सकता है।

मर्यादा महोत्सव पर एक कार्यक्रम होता है जो न केवल साधु-साध्वियों के लिए बल्कि श्रावक समाज के लिए भी आकर्षण का केन्द्र होता है। वह होता है—चातुर्मासों की घोषणा। सैकड़ों क्षेत्रों से हजारों भाई-बहन अपने-अपने क्षेत्रों की प्रार्थना लेकर उपस्थित होते हैं तथा उत्कंठापूर्वक इंतजार करते हैं। आचार्यश्री नामपूर्वक जैसे ही घोषणा करते हैं तब वहां उपस्थित साधु-साध्वियां तत्काल स्वीकृति वाचक तहत् कहते हुए वंदना करते हैं। अनुशासन तथा समर्पण का यह अनुपम दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है।

यह बड़े गौरव की बात है कि दो शताब्दी से कुछ अधिक समय पूर्व मात्र 20 साधुओं के लिए आचार्य भिक्षु ने जो मर्यादाएं लिखीं, आज लगभग सात सौ साधु-साध्वियों के लिए भी वे उतनी ही उपयोगी हैं जितनी उस समय थी। लंबे अंतराल के बाद भी उनमें परिवर्तन व संशोधन करने की कोई अपेक्षा नहीं हुई, यह महान् आश्चर्य की बात है। जबकि भारतीय संविधान भी न जाने कितनी बार बदलता है। दिगम्बर समाज के विद्वान् संत उपाध्याय विद्यानंदजी ने दिल्ली में विशाल धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि तेरापंथ संघ महान् है, आचार्य भिक्षु महान् हैं, उनके द्वारा प्रदत्त मर्यादाएं महान् हैं, क्योंकि मर्यादाओं की उस समय जो उपयोगिता थी, आज उससे भी कई गुना अधिक उपयोगिता है।

आज अनेक धर्म-संप्रदायों में आपसी संघर्ष को देखते हैं, जिनका मूल कारण है शिष्यों की ममता। अपना-अपना शिष्य बनाने के लिए न जाने कितने झगड़े-झंझट हो जाते हैं। इसी संदर्भ में आचार्य भिक्षु ने महत्त्वपूर्ण धारा लिखी कोई अपना शिष्य-शिष्या न बनाए। तेरापंथ के साधु-साध्वियों में यह मंत्र इस तरह घुल गया है कि शिष्य बनाना तो दूर, बनाने का सपना भी नहीं लेते।

प्रश्न उठता है कि अगर आचार्य को शिष्य का लोभ जग जाये, तो आचार्य भिक्षु ने उन्हें भी बांध दिया। पंथ बढ़ाने के लिए किसी को भी दीक्षा न दी जाएं, आचार्य भी योग्य व्यक्ति को दीक्षित करें। दीक्षित होने पर भी कोई अयोग्य निकले तो संघ से अलग कर दें। संघ को विशुद्ध रखने में एक महत्त्वपूर्ण धारा है योग्य शिष्यों का चयन। योग्यता ही संघ की प्रगति का आधार बनती है, इसलिए आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ में दीक्षा का अधिकार एकमात्र आचार्य को दिया। आचार्य भी योग्यता की कसौटी किये बिना मुमुक्षु भाई-बहनों को दीक्षित नहीं करते। पहले वर्षों तक मुमुक्षु साधकों का पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रायोगिक प्रशिक्षण चलता है। वहां शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक परीक्षण के बाद आचार्य उन्हें दीक्षित करते हैं। कभी उनके निर्देशानुसार अन्य साधु-साध्वियां भी दीक्षा देते हैं।

आचार्य भिक्षु कुशल मनोचिकित्सक भी थे। वे जानते थे किन बीमारियों के कारण धर्मसंघ जीर्ण-शीर्ण होते हैं। संघ चाहे छोटा हो या बड़ा, व्यवस्था बनाए रखने के लिए नियमों का पालन तो करना ही होगा। सामूहिक जीवन मर्यादा व अनुशासन के बिना चल नहीं सकता, अन्यथा समाज में अराजकता पैदा हो जाएगी। अतः आचार्य भिक्षु ने एक नेतृत्व की बात कहकर दलबंदी की रीढ़ को तोड़ डाला। आज तेरापंथ धर्मसंघ में शिष्य बनाने की बात भूल गए तो गुट बनाने की भूख भी शांत हो गई है। जब कभी पद की भूख जगती है तो उसे स्थान नहीं मिलता। आचार्य भिक्षु ने पद की उम्मीदवारी पर लगाम लगाई, पर पद योग्य बनने पर कभी अंकुश नहीं लगाया। बल्कि धर्मसंघ में ऐसी व्यवस्था की, जिससे संघ के प्रत्येक सदस्य का विकास हो सके। अनुशासन-हीनता को जहां प्रश्रय नहीं मिलता

वहां तेजगति से विकास संभव है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—तेरापंथ धर्मसंघ। करीब ढाई सौ वर्षों का इतिहास, जो संख्या की दृष्टि से अल्प है किन्तु विकास की दृष्टि से विश्व में चर्चा का केन्द्र बना हुआ है। उद्भव काल में जिसको स्वतंत्र संप्रदाय के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, वही धर्मसंघ आज जैनधर्म का पर्याय बन गया है। तेरापंथ की तेजस्विता का रहस्य है, 'मैं पद के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा।' मर्यादा की यह धारा आज संघ का सुरक्षा कवच बन गया है। आचार्य भिक्षु ने और भी अनेक मर्यादाओं का निर्माण किया था। किन्तु कभी महोत्सव के रूप में आयोजन नहीं हुआ था। जब साधु-साध्वियों का मिलन होता तब मर्यादाओं का वाचन होता। प्रज्ञापुरुष जयाचार्य ने इसे महोत्सव का रूप दिया। पहला मर्यादा महोत्सव (वि.सं. 1921) बालोतरा में हुआ, उसके बाद प्रतिवर्ष यह मर्यादा-महोत्सव आचार्यश्री के सान्निध्य में मनाया जाता है। जयाचार्य ने मर्यादाओं को जहां महोत्सव का रूप दिया तो विस्तार देने का दुरूह कार्य किया पूज्य गुरुदेव श्रीतुलसी व आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने।

तेरापंथ धर्मसंघ में मर्यादा को बहुमान दिया है। **आणाए मामगं धम्मं** आज्ञा ही मेरा धर्म है यहां कोई कितना भी विद्वान् क्यों न हो, मर्यादा की उपेक्षा करना मान्य नहीं है। यही कारण है कि आज इतना बड़ा व प्रबुद्ध धर्मसंघ एक आचार्य के नेतृत्व में अविच्छिन्न रूप में चल रहा है। मर्यादा व कानून की जहां कहीं भी उपेक्षा होती है वह विश्रृंखल हो छिन्न-भिन्न हो जाता है।

संघ की सुदृढ़ता हेतु दीर्घद्रष्टा आचार्य भिक्षु ने लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व जिन मर्यादाओं का निर्माण किया था वह पत्र वरू की कलम से लिखा हुआ आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है। उसी पत्र को आचार्य प्रवर महोत्सव पर दिखाते हैं तथा उसका वाचन करते हैं। तब सैकड़ों साधु-साध्वियां व समण-समणियां दीक्षा पर्याय से पंक्तिबद्ध खड़े होकर स्वीकृत मर्यादाओं को पुनः दोहराते हैं। उस नयनाभिराम दृश्य को देखकर व्यक्ति का पौर-पौर खिल जाता है।

आचार्य भिक्षु ने मर्यादाओं का निर्माण करके अपने कर्तव्य की इति-श्री नहीं मानी अपितु पूरे धर्मसंघ में मर्यादाओं के प्रति आस्था जगाई। उसकी उपयोगिता समझाकर प्रशिक्षण दिया। वर्तमान सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता के स्वर लाखों कंठों से प्रतिध्वनित हो रहे हैं। जैन-अजैन सभी संप्रदायों के प्रबुद्ध मनीषी-जन मर्यादाओं व मर्यादापुरुष आचार्य भिक्षु के प्रति नतमस्तक हैं। ❑

आलोचना के स्तर पर भूल न बताएं। बहुत बार तीखी आलोचना सुनते-सुनते कई लोग आत्मविश्वास खो देते हैं और विद्रोही बन जाते हैं। निराश होकर भी बैठ जाते हैं। भूलकर्ता में भूल स्वीकार की क्षमता पैदा करना एक समझदार व्यक्ति का काम है। दोषी में दोष उद्घाटन का सामर्थ्य पैदा करना बहुत ऊंचा काम है। फ्रांस का एक राजदूत, जिससे पूछा गया- आपकी सफलता का राज क्या है? मैं किसी को बुरी बात नहीं कहता। अगर कहता हूं तो वे ही बातें जो समझाने लायक हैं। इसी प्रसंग पर लिंकन ने कहा- तुम किसी की आलोचना, निंदा मत करो ताकि तुम्हारी भी कोई आलोचना न करे। बात सही भी है, जब अपने घर की सीढ़ियां ही गंदी है तो फिर पड़ोसी की छत पर पड़ी गंदगी की तुम शिकायत क्यों करते हो?

आचार्य भिक्षु एवं काण्ट का निरपेक्ष आदेश : एक अध्ययन

डॉ. समणी चैत्यप्रज्ञा

यदि आचार्य भिक्षु जर्मनी में होते तो उनकी ख्याति काण्ट से कम नहीं होती--सत्करी मुखर्जी के इस विचार से यह प्रश्न उठता है कि आचार्य भिक्षु व काण्ट के दर्शन में ऐसी कौन-सी समानताएं हैं जो दोनों को समकक्ष खड़ा करती है?

प्रस्तुत आलेख में इमानुअल काण्ट एवं आचार्य भिक्षु के लेखन में ऐसा क्या है जो दोनों विचारकों का परस्पर अध्ययन करने हेतु प्रेरित करता है --इस तथ्य को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। यह संभव है कि बहुत सारे तथ्य समान हों, परन्तु यहां पर मात्र आचार संबंधी कुछ तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास है।

काण्ट परिणाम निरपेक्ष नैतिकता के पक्षधर हैं। उनके अनुसार नैतिकता का सर्वोच्च नियम, बौद्धिक नियम एवं परिणाम निरपेक्ष नियम होता है।

काण्ट आदेशों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं--

1. सापेक्ष आदेश, 2. निरपेक्ष आदेश

सापेक्ष आदेश वह है जो परिणाम को ध्यान में रखकर किसी कर्म को करने अथवा नहीं करने के लिए बाध्य करता है। सापेक्ष आदेश सदा शर्त के आधार पर होता है, जैसे--यदि आप परिश्रम करोगे तो उत्तीर्ण होंगे। जब सापेक्ष आदेश को माननेवाली सुखवाद एवं उपयोगितावाद की परम्परा चल रही थी, काण्ट ने निरपेक्ष आदेश का सिद्धांत देकर पाश्चात्य नीति दर्शन में एक नवीन क्रांति की जिसे डिओन्टोलोजिकल अथवा नॉन कोन्सिक्वेंशियल एथिक्स कहा जाता है।

काण्ट का निरपेक्ष आदेश किसी कर्म के उद्देश्य पूर्ति को साधन न मानकर उस कर्म को अपने आप में शुभ तथा अनिवार्य मानता है।

इस सिद्धांत की चार विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. कोई क्रिया का नैतिक अथवा अनैतिक होना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि उसका परिणाम क्या है।
2. क्रिया का नैतिक अथवा अनैतिक होना, इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें सार्वभौमिकता है अथवा नहीं। यह आदेश मनुष्यों की इच्छाओं तथा प्रवृत्तियों पर निर्भर नहीं होता। यह आदेश स्वतः साध्य है।
3. निरपेक्ष आदेश में अपवादों का स्थान नहीं है। वह देश, काल, परिस्थिति पर निर्भर नहीं है, सर्व प्राणी जगत् के लिए यह शुद्ध बुद्धि का आदेश है।

4. इस आदेश में कोई व्यक्ति साधन नहीं होता अपितु साध्य होता है। यह सिद्धान्त व्यक्ति को साधन मानने की आज्ञा नहीं देता।

आचार्य भिक्षु का दर्शन काण्ट के चक्षुओं से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि आचार्य भिक्षु भी परिणाम निरपेक्ष धर्म के पक्षधर थे–यह उनके द्वारा प्रदत्त तीन दृष्टांतों के द्वारा समझ सकते हैं–

चोर हिंसक नै कुसीलियां, यां तांई दीधो साधां उपदेश।
त्यां नै सावद रा निरवद किया, एहवो छै जिन दया धर्म रेश।।

वे तीन दृष्टांत एवं उनका परिणाम निरपेक्षात्मक विश्लेषण इस प्रकार है :

पहला दृष्टांत : एक सेठ की दुकान में साधु ठहरे। रात में चोर दुकान में घुसे। ताला तोड़ा, धन की थैलियां ले मुड़ने लगे। इतने में साधुओं ने चोरों को रोका और उन्हें उपदेश दिया। चोरों के हृदय में परिवर्तन हुआ और चोरों ने चोरी न करने का आजीवन संकल्प कर लिया। जब सेठ ने चोरों को एवं धन को सुरक्षित देखा तो स्तब्ध रह गया। चोर बोले-सेठजी यह आपका धन सुरक्षित है। यह मुनि के उपदेश का प्रभाव है कि हम लोग सदा के लिए इस बुराई से बच गए और इसके साथ-साथ धन बच गया। इस पहले दृष्टांत में तीन बातें हुईं–

साधुओं का उपदेश देना, चोरों द्वारा चोरी छोड़ना एवं धन का बचना। काण्ट के परिणाम निरपेक्षता के सिद्धांत की दृष्टि से इस घटना को देखा जाए तो यह स्पष्ट सिद्ध होता है साधुओं का उपदेश देना उनका नैतिक कर्तव्य था और चोरों का हृदय परिवर्तन अपने आप में नैतिक क्रिया हुई, परन्तु प्रथम दोनों क्रियाओं की नैतिकता धन के बचने के परिणाम से निरपेक्ष है। दोनों क्रियाएं स्वतः नैतिक एवं धार्मिक (शुभ) हैं।

दूसरा दृष्टांत : कसाई बकरों को आगे किए जा रहे थे। उन्हें मार्ग में साधु मिले। साधुओं ने उसे समझाया। कसाइयों ने बकरों को मारने का आजीवन त्याग कर दिया। इसमें भी तीन कार्य हुए हैं- साधु का उपदेश देना, कसाई का आजीवन बकरों को मारने का त्याग करना एवं बकरों का बचना। इनमें पहली दो क्रियाओं की नैतिकता बकरे के बचने से निरपेक्ष है। यही आचार्य भिक्षु का सिद्धांत है और यही है काण्ट का निरपेक्षपरिणामवाद।

तीसरा दृष्टांत : आचार्य भिक्षु के द्वारा प्रदत्त तीसरे दृष्टांत से काण्ट का निरपेक्षपरिणामवाद और अधिक पुष्ट होता है, जो इस प्रकार है–जिसमें तीन व्यक्ति वेश्या के पास जा रहे हैं। संयोगवश साधु से भेंट हो गई। साधु ने जब जाना कि वे लोग घृणित कार्य करने जा रहे हैं तो उन्हें उपदेश दिया। साधु का उपदेश हृदय तक ऐसा पहुंच गया कि उन्होंने आजीवन इस जघन्यवृत्ति का प्रत्याख्यान कर दिया। वह वेश्या बहुत देर तक उनकी राह देखती रही। अंततः वह उन्हें ढूंढ़ते हुए वहां तक पहुंच गईं। जब उसे पता चला कि तीनों ने इस घृणित कार्य का त्याग कर दिया है तो उसने शोकाकुल हो कुएं में गिरकर आत्महत्या कर ली।

आचार्य भिक्षु के अनुसार यदि चोरी त्याग के प्रसंग में बचने वाले धन से साधु के द्वारा अहिंसा हुई, हिंसा त्याग के प्रसंग में बकरों के बचने से अहिंसा हुई, तब तो वेश्या के आत्महत्या की हिंसा साधु को लगेगी, यह मानना होगा, परन्तु यह मानना कदापि युक्तियुक्त नहीं है। अतः किसी भी क्रिया अथवा कार्य का आचार्य भिक्षु के शब्दों में शुभ अथवा अशुभ, काण्ट के शब्दों में नैतिक अथवा अनैतिक होना उसके परिणाम पर आधारित नहीं है। अपनी कृति Metaphysics of Moral में भी काण्ट यह स्वीकार करते हैं कि "The good or bad consequences of our obligated action also, the consequences arising from failing to perform a meritorious action cannot be imputed to the agent."

अतः आचार्य भिक्षु के इन तीन दृष्टांतों में काण्ट के निरपेक्ष आदेश स्पष्ट रूप से झलकता है।

आचार्य भिक्षु के सिद्धांतों में काण्ट के निरपेक्ष आदेश की व्याख्या इस प्रकार देखी जा सकती है :

जीव जीवे ते दया नहीं, मरें तो हिंसा मत जाण।
मारणवाला ने हिंसा कही नहीं मारे तो दया गुण खाण।।

जीव का जीना अथवा मरना नैतिक अथवा अनैतिक नहीं, परन्तु मारने की क्रिया हिंसा है। नहीं मारना ही धर्म है।

निरपेक्ष आदेश का सिद्धांत आचार्य भिक्षु के अहिंसा दर्शन में स्पष्ट दिखाई देता है। आचार्य भिक्षु ने अहिंसा को सार्वभौम अर्थात् व्यक्ति निरपेक्ष स्वीकार किया है। उन्होंने बड़े जीवों के पोषण हेतु छोटे जीवों को साधन के रूप में उपयोग करने को हिंसा, क्रूरता एवं अनैतिक क्रिया माना है। उसे नैतिक नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अहिंसा को क्षेत्र निरपेक्ष एवं काल निरपेक्ष भी माना है।

आचार्य भिक्षु की मूलवाणी इस प्रकार है–

केई अग्यांनी इम कहें, एकिन्द्रय ना पुन्य अल्पमात।
त्यानें मार पचेंद्री पोषिया, तिण में धर्म ख्यात।।

अर्थात् कोई अज्ञानी यह कहता है कि एकेंद्रिय जीवों में पुण्य पंचेंद्रिय जीवों की अपेक्षा अल्प होता है, अतः उनको मारकर पंचेंद्रिय जीवों का पोषण करने में धर्म होता है, यह उनका अज्ञान है, क्योंकि एकेंद्रिय ने कब उनको अपने प्राण हरण की आज्ञा दी? एकेंद्रिय को भी वेदना होती है। प्राणी मात्र को जीवन प्रिय होता है। अतः काण्ट की तरह आचार्य भिक्षु ने भी छोटे जीवों को साधन के रूप में उपयोग करना अनैतिक एवं सावद्य माना है।

काण्ट के अनुसार नैतिक नियम वह है, जिसमें निरपेक्ष आदेश है और यह निरपेक्ष आदेश या तो विधेयात्मक या निषेधात्मक ही होता है। आचार्य भिक्षु द्वारा रचित मर्यादाओं में इसका प्रायोगिक रूप देखा जा सकता है, क्योंकि जो आदेश आचार्य भिक्षु ने इन मर्यादाओं में दिए हैं वे सारे या तो विधि रूप हैं अथवा निषेध रूप में ही है। उनमें कहीं भी सापेक्ष परिणामवाद नहीं दिखता है।

अतः यह स्पष्ट है कि आचार्य भिक्षु के नैतिक विचार दर्शन को काण्ट के नीति दर्शन का प्रायोगिक रूप माना जा सकता है।

काण्ट पर यह बहुत बड़ा आक्षेप रहा कि उनका निरपेक्ष आदेश रिक्त है क्योंकि उन्होंने निरपेक्ष आदेश का सिद्धांत तो दे दिया किन्तु क्या कर्तव्य है या क्या नहीं इस बारे में कोई चर्चा नहीं की। जब व्यक्ति आचार पक्ष में निर्णय करना चाहता है कि क्या करे या क्या न करे–तब ये सिद्धांत स्पष्टता से नहीं बताता अतः इसकी प्रायोगिकता पर प्रश्नचिह्न लगता रहा, आचार्य भिक्षु ने मर्यादाओं का निरूपण कर इस आक्षेप को भी निरस्त कर दिया। आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त मर्यादाओं में यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि तेरापंथी जैन साधु के लिए क्या कर्तव्य है। इस प्रकार से इन मर्यादाओं को आचार्य भिक्षु के निरपेक्षपरिणामवाद का प्रायोगिक रूप माना जा सकता है और इन्हीं मर्यादाओं के चलते काण्ट के निरपेक्ष आदेश पर लगे हुए आक्षेप आचार्य भिक्षु पर नहीं लागू होते। अतः यह सिद्ध होता है कि आचार्य भिक्षु अगर जर्मनी में होते तो उनकी ख्याति काण्ट से भी अधिक होती–यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं अपितु युक्तिपूर्ण विचार है। ❑

प्राण और त्राण

हम भारतीय लोग अभी पूरे यांत्रिक नहीं हैं इसलिए हाथ पर और हाथ की अंगुलियों पर बहुत विश्वास करते हैं।

कुम्हार की अंगुलियों पर हम इसीलिए विश्वास करते हैं कि वह मिट्टी को आकार ही नहीं देता, अपना प्राण भी देता है।

गुरु की अंगुलियों पर हम इसीलिए विश्वास करते हैं कि मिट्टी को आकार ही नहीं देता, अपना प्राण भी देता है।

यह प्राण का ही संचार भारतीयता है और यह भारतीय दर्शन का रहस्य है कि तुम किसी को त्राण मत दो, प्राण दो। त्राण प्रतिक्रिया पैदा करता है और प्राण पैदा करता है श्रद्धा।

श्रावक अपने आप से पूछे

साध्वी सहजप्रभा

दीपक बोलता नहीं, उसका परिचय है प्रकाश। व्यक्तित्व बोलता नहीं, उसकी भाषा है कर्तृत्व। कर्तृत्व ही व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान करता है। योग्यता और कार्य क्षमता कर्तृत्व को निखारती है। महापुरुषों की अनुभव वाणी है कि अपनी योग्यता बढ़ाओ और कार्यक्षमता जगाओ। बिना योग्यता और बिना कार्यक्षमता के कोई भी व्यक्ति अग्रिम स्थान में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

कोई श्रावक चाहे कि वह चांद-सितारों की सवारी करे तो उसको चाहिए कि वह अपनी अच्छी तैयारी करे। अपने कार्यक्षेत्र में काम करना और अपने कर्तृत्व के आधार पर नई पहचान बनाना सर्वथा अलग बात है। वह कर्तृत्व प्रशस्त माना जाता है, जिसमें अंग्रेजी के चार P का समावेश होता है।

1. P अर्थात् पीसफुल—जो शांत मस्तिष्क से काम करता है।
2. P अर्थात् परपजफुल—जो स्वयं उद्देश्य से प्रेरित होकर काम करता है।
3. P अर्थात् प्रॉडक्टिव—जिसका दृष्टिकोण एवं कार्य रचनात्मक होता है।
4. P अर्थात् प्रोग्रेसिव—जो प्रगतिशील होता है। जिसकी दृष्टि सुदूर भविष्य पर केन्द्रित रहती है।

जिस श्रावक में इन चारों बिंदुओं का पर्याप्त योग होता है, वे श्रावक अपनी लक्ष्यनिष्ठा, दायित्व की प्रतिबद्धता एवं सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा अपने कर्तृत्व की धार को तेज करते हुए, आगे से आगे सफलता के सोपानों पर आरोहण कर सकते हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने श्रावक संबोध में लिखा है कि 'श्रावक वह होता है जिसकी धर्म के प्रति, वीतरागता के प्रति, यथार्थता के प्रति श्रद्धा होती है एवं गतिविधियों के प्रति सहज समर्पण भाव होता है।'

हमारा श्रावक समाज प्रगति के पायदान पर नए उजाले के साथ कदम रखे और आज समीक्षा करे कि कदम कितने आगे बढ़े हैं, किस ओर बढ़े हैं, कितना बढ़ना है और किस ओर बढ़ना है? कहीं ऐसा तो नहीं कि भौतिकता की चकाचौंध में, आधुनिकता की होड़ में आप अपने लक्ष्य को भूल रहे हैं। हर श्रावक का अपना लक्ष्य हो कि वह अपने श्रावकत्व को निखारते हुए सशक्त कार्यकर्ता बनकर धर्मसंघ के गौरव को बढ़ाए।

हमें गौरव है हमारे समस्त श्रावक समाज पर, इन लाखों-लाखों हाथों पर, जिनकी बदौलत धर्मसंघ को व सभा को ऊंचाइयां मिली हैं। हमें गर्व है हमारे श्रावकों पर जिन्होंने जो किया या कर रहे हैं, वह धर्मसंघ के लिए कर रहे हैं, सभा संस्थाओं के लिए कर रहे हैं। गुरु गरिमा के संवर्धन के लिए कर रहे हैं। अपने स्वार्थ को किनारे पर रखकर कर रहे हैं, फिर भी मूल्यांकन करें स्वयं का, अपनी भीतरी शक्ति का, अपनी भावनाओं का, जिससे आप श्रेष्ठ श्रावक, कार्यकर्ता बनकर संस्था व धर्मसंघ के वर्चस्व को नई पहचान दे सकें।

इसके लिए जरूरी है कि हम चिंतन करें कि हमारा व्यक्तित्व कैसा है? काम करने का ढंग कैसा है, हमारी सोच कैसी है, जीवन शैली कैसी है? कार्य क्षमता कैसी है?

हम सभी जानते हैं कि, समाज में नई चेतना व नई क्रांति लाने के लिए श्रावकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए आइए, कुछ मुद्दों पर चिंतन करें, आत्मालोचन करें, परिष्कार करें एवं संकल्पबद्ध बनें कुछ और नया करने के लिए।

आत्मालोचन की भाषा संवाद की भाषा हो। अपने आप से जिज्ञासा करने की भाषा हो, अपने आपको पहचानने की भाषा हो।

- भगवान महावीर के अनुयायी श्रावक प्रतिदिन एक सामायिक, योगासन और 20 मिनट धर्मोपासना करते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- आचार्य भिक्षु के प्रति श्रद्धा रखने वाले श्रावक त्यागप्रधान जीवन में केवल विश्वास ही नहीं करते, उसे जीते भी हैं, इसलिए श्रावक प्रतिदिन कम से कम एक घंटा तिविहार या चौविहार त्याग करते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक चारित्रात्माओं के दर्शन एवं सेवा करने का भाव रखते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक सदा धर्मसंघ व सभा संस्थाओं के विकास की बात सोचते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक गलती होने पर सहज स्वीकार करते हैं। व्यर्थ के तर्क में नहीं उलझते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक देव, गुरु, धर्म के प्रति श्रद्धाशील रहते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- महातपस्वी आचार्यश्री महाश्रमणजी के इंगित व निर्देश के प्रति सर्वात्मना समर्पित रहते हैं एवं तन मन से उसका पालन भी करते हैं। पूज्यवर के इंगितानुसार हमारे श्रावक मृत्युभोज व तपस्या पर भोज नहीं करते, न ही इन अवसरों पर लेन-देन व आडम्बर करते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक जैनत्व व श्रावकत्व को निखारने के लिए जमीकंद एवं रात्रिभोजन का परिहार करते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- जीवन में अनके गुणात्मक पहलू हो सकते हैं, किंतु चरित्र की निर्मलता जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है, अतः जीवन के गुणात्मक पहलुओं को ऊंचा उठाने के लिए हमारे श्रावक चरित्र निष्ठा का विकास करते हैं। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- समाज के लिए अर्थ पवित्र वस्तु है, अतः उसका अपव्यय करना उसका अपमान है। इसलिए जसोल में हुए महासभा अधिवेशन में पूज्यवर ने फरमाया था कि श्रावक समाज धार्मिक संस्थाओं, अधिवेशनों, सम्मेलनों, ज्ञानशाला आदि में अर्थ का अपव्यय न करें, फिजूल खर्च को रोकें, मितव्ययिता को बनाए रखें। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारे श्रावक जैन संस्कृति को कायम रखते हुए विवाह, जन्मदिन आदि प्रसंगों पर आइटमों व डेकोरेशन की सीमा करते हैं। यश, नाम व कीर्ति

की आकांक्षा से प्रदर्शन व होड़ाहोड़ी में अनाप-शनाप आइटमों व डेकोरेशन का प्रयोग कर हिंसा व असंयम में सहभागी नहीं बनते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।

- तेरापंथ धर्मसंघ के श्रावक पद की आकांक्षा से चुनाव के समय वोटिंग का प्रयोग नहीं करते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- श्रावक धर्मसंघ की श्रीवृद्धि के लिए एवं गुरु गरिमा के संवर्द्धन के लिए हर पल सजग रहते हैं। ऐसा कोई कार्य नहीं करते जो तेरापंथ धर्मसंघ की रीति-नीति के विपरीत हो। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमारा श्रावक समाज, समाज में व्याप्त कुरूढियों को मिटाने के लिए सिर्फ मीटिंग, आयोजन, सम्मेलन ही नहीं करता अपितु उसमें नियम व नीति भी निर्धारित करते हैं। उस निर्धारित नियम व नीति का उल्लंघन कोई भी श्रावक, किसी भी स्थिति में नहीं करता। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें।
- हमें विश्वास है, हमारे अनुभवी श्रावक नए कार्यकर्ताओं को हर कार्य में आगे रखते हैं, क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें, परिष्कार करें।
- सबके सामने प्रशंसा के पुल एवं पीछे से आलोचना का पुलिन्दा सुपुर्द करनेवाले श्रावक नहीं होते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें। परिष्कार करें।
- हमारे श्रावक काम सफल होने पर अपना श्रेय दूसरों को बांटते हैं। 'यह मैंने किया' ऐसे बड़प्पन के भाव प्रकट नहीं होने देते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें। परिष्कार करें।
- मेरे जैसा काम आज तक किसी ने नहीं किया, इस भावना को हमारे श्रावक नहीं जताते। क्या आप ऐसा करते हैं? आत्मालोचन करें। परिष्कार करें।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हर श्रावक अपना मूल्यांकन करे कि वह किस श्रेणी का श्रावक है? साधारण, उत्तम है या श्रेष्ठ? हमें विश्वास है, हमारा श्रावक श्रेष्ठतम होगा। श्रावक समाज श्रेष्ठता के विकास के लिए संकल्पबद्ध हो, यही श्रावक समाज से अपेक्षा है। ❑

सही दिशा में चलो अगर तो मंजिल स्वयं मिलेगी।
आएगा ऋतुराज धरा पर कलियां स्वयं खिलेगी।।
पांव बढ़े जिस ओर उधर ही मार्ग नया बनता है।
स्नेह और बाती को पाकर दीपक खुद जलता है।।
पौरुष में विश्वास अगर हो जड़ता स्वयं हिलेगी।
संकल्पों की धरती पर सपनों की फसल उगेगी।।

जीवन और काल की सार्थकता

मुनि मोहजीत कुमार

जीवन एक प्रवहमान समुद्र है, जिसकी तरंगें निरंतर चंचल हैं। चंचलता का अस्तित्व चलायमान है। इसी प्रकार काल भी प्रतिपल अपना परिवेश बदलता है, इस बदलाव में उम्र का बदलाव भी हर पल नया परिवर्तन लाता है। कालक्रम के उछलते-मचलते सरित्प्रवाह में दिन, माह, वर्ष, युग, शताब्दियां बदलती हैं। जिसमें कभी झरने की-सी मोहकता प्रतीत होती है तो कभी तेज गति से बहते उफनते नाले की भयावहता। कभी संगीत की नाजुक सुरावलियां उभरती हैं तो कभी तेज आंधी की घुघाहट, ये सारे परिदृश्य कालक्रम से अनुबन्धित हैं। इस साल की शुरुआत पर हम अवलोकन करें कि बीते साल के कितने प्रभात और कितनी रातें शुभ भावों, परिणामों एवं कार्यों में बीते हैं?

नया वर्ष अतीत के कैलेन्डर को बदलने की प्रेरणा के साथ नवीनता का संकेत देता है। भगवान महावीर कहते हैं—'खणं जाणाहि पंडिए' समय का अंकन करो। जीवन और काल की सार्थकता का संकेत यही है कि जो प्रतिक्षण जागरूक रहता है वही सफलता का वरण करता है। गत दिनों 12 दिसम्बर 12 को तारीख का ऐसा संयोग बना जो इस सदी में अपनी तरह का आखिरी दिन माना गया। 12-12-12 को लेकर इंटरनेट पर तमाम तरह की अटकलें लगाई गईं, जिसमें कुछ अच्छी तो कुछ खराब तरीके की भी थी। मसलन कुछ लोग इसे प्रलय का दिन यानी डूम्स डे भी कह रहे थे। कहा यों भी गया कि माया कैलेन्डर के मुताबिक डूम्स डे पर दुनिया खत्म होती है पर काल पर न तो अंकुश लगाया जा सकता है तथा न उसे बांधा जा सकता है। यह नियति का एक क्रम है। जिसे न घटाया जा सकता है और न बढ़ाया जा सकता है। समय का चक्र अपने ढंग से गतिमान है, पर हम उसके बहते प्रवाह का सम्यक् उपयोग कितना करते हैं, यह देखना है।

समय के हर पल के साथ हम जागती आंखों के सच को जीएं। विरासत से प्राप्त जीवन मूल्यों की सार-संभाल करें। जीवन विकास के सपनों की सार्थकता के लिए पुरुषार्थ करें। प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक आकांक्षा भी यही रहती है कि उसके जीवन का हर पल सुखी रहे, स्वस्थ रहे। वह काल प्रवाह के साथ सम्मुन्नत रहे। उसकी चाह है कि प्राणों में तेज और ऊर्जा का भण्डार निरंतर प्रवर्धमान रहे। चित्त में शान्ति, आनंद की धाराएं प्रवाहित रहे। यह सब सम्भव है, पर इसके लिए काल के प्रवाह में न बहकर संतुलित जीवनक्रम, समय का सार्थक उपयोग, मन और भावों में सकारात्मकता का ज्वार, सही दृष्टिकोण, पुरुषार्थ एवं अध्यात्म के प्रति लगाव का रुझान आवश्यक है। हमारे जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों की शुरुआत शुभता से हो। हम संकल्प करें कि जीवन की हर सुबह—

- मंजिल तक पहुंचने के संकल्प से हो।
- आदतों, वृत्तियों, महत्त्वाकांक्षाओं से बचने के लिए हो।
- सद्कार्यों हेतु दायित्व की बागडोर थामने के लिए हो।
- निर्माण सुधार तथा विकास के लिए हो।
- ड्रिंक्स, डांस और ड्रग्स से बचने के लिए हो।
- गलत अवधारणा से मुक्ति पाने के लिए हो।
- संकल्प की दृढ़ता और लक्ष्य की निर्णायकता से हो।
- जीवन मूल्य एवं जीवन-शैली की तेजस्विता से हो।
- मानवीय चरित्र उत्थान की प्रयत्नशीलता से हो।
- स्वास्थ्य, शक्ति, सौन्दर्य, सम्पत्ति की वर्धापना से हो।
- सुविधावादी और पदार्थवादी मनोवृत्ति के परिष्कार के लिए हो।

समय को पहचानो

समणी ज्योतिप्रज्ञा

1 जनवरी 2013 के नए दिन की पूरे विश्व ने अगवानी की और 2012 को अलविदा कहा। प्रश्न होता है कि नया क्या है? सब कुछ वही है। नया कुछ भी नहीं है। जैसा सूर्य 31 दिसम्बर 2012 को उदित हुआ था, वैसा ही आज उदित हुआ है। ग्रह, नक्षत्र, चांद, तारे, निहारिकाएं, मेघ सब-कुछ कल जैसे ही प्रतीत हो रहे हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष, फल-फूल, धरती-गगन में कहीं कुछ परिवर्तन नजर नहीं आ रहा है। वही व्यक्ति, वही बाजार, वही कार्यालय। आखिर नयापन है कहां?

नयापन है विचारों में, उत्साह में, उल्लास में। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति नए वर्ष से कुछ मांग रहा है। एक वैज्ञानिक अनुसंधान की, साहित्यकार कुछ नया लिखने की, व्यापारी व्यापार बढ़ाने की, राजनेता उच्च पद पर आसीन होने की, विद्यार्थी प्रथम स्थान प्राप्ति की आशा संजो रहा है। एक तपस्वी अधिकाधिक तपस्या करने की, धार्मिक धर्म क्षेत्र में आगे बढ़ने की, अध्यात्म साधक निषेधात्मक भावों पर नियंत्रण की बात सोच रहा है।

भगवान महावीर के शब्दों में नए वर्ष का संदेश है–'किं मे कडं, किं च मे किच्चसेसं' मैंने क्या किया और क्या करना शेष है?

नया वर्ष आत्मचिन्तन, आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण व आत्मविश्लेषण का दिन है। अतीत की भूलों से सबक लेने का दिन है। भावी विकास हेतु संकल्प संजोने का दिन है। वर्तमान को सजाने व संवारने का दिन है।

नया वर्ष समय का उद्‌बोधक है। जैन दर्शन के षड्‌द्रव्यों में एक द्रव्य है काल। पांच समवायों में प्रथम समवाय है काल। किसी भी कार्य की सफलता में काल एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। सर्वविध अनुकूलताएं होने पर भी समय से पूर्व कोई कार्य निष्पन्न नहीं होता। धूप, हवा, पानी मिलने पर भी वप्त बीज तत्काल अंकुरित नहीं होता। जीव के अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आने का एक मात्र हेतु है– काललब्धि। समय को अंगेजी में Time कहते हैं। Time क्या है? इसे इन चार वर्णों में समझा जा सकता है।

1. T - Time, 2. I - Intangible, 3. M - Mobile, 4. E - Endless

समय अतिसूक्ष्म, अमूर्त, गतिशील व अनंत है।

Intangible–समय अत्यंत सूक्ष्म व अमूर्त है। आचार्य तुलसी ने जैन सिद्धांत दीपिका में समय की परिभाषा दी है–निमेषस्यासंख्येय तमो भागः समयः। निमेष के असंख्यातवें भाग को समय कहते हैं। समय की सूक्ष्मता को दो दृष्टांतों से समझाने का प्रयास किया है। 1. कमलपत्र भेदन, 2. जीर्ण वस्त्र भेदन।

कमलपत्र भेदन–कमल के सैकड़ों पत्तों को एक दूसरे के ऊपर रखकर एक तीक्ष्ण सूई लेकर एक साथ बींधने पर ऐसा लगता है मानो सूई एक साथ पत्तों में से पार हो गई। यथार्थ है कि सूई सब पत्तों में से क्रमशः निकलती है। एक पत्ते के भी एक-एक रोएं को छेदती हुई सूई आगे बढ़ती है। एक रोएं को कटने में जितना समय लगता है उससे भी अति सूक्ष्म है समय।

जीर्ण वस्त्र भेदन–एक युवा जीर्ण साड़ी को एक झटके में फाड़ देता है। दर्शक को लगता है मानो एक साथ साड़ी फट गई, किन्तु ऐसा नहीं होता। साड़ी अनेक धागों से बनी है। एक धागा अनेक रोंओं से बना है। एक रोएं को फटने में जितना समय लगता है उससे भी अत्यंत सूक्ष्म है समय।

समय की सूक्ष्मता को जानना अल्पश्रुत के लिए कठिन कार्य है। चंक्रमण, परत्व, अपरत्व, वर्तना आदि

के द्वारा समय ज्ञेय है। समय को दो भागों में विभक्त किया गया है– 1. निश्चय काल, 2. व्यवहार काल। निश्चय काल सर्वव्यापी है। आवलिका, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पल्योपम इत्यादि व्यावहारिक काल है। व्यावहारिक काल मनुष्य क्षेत्र में ही है। प्रत्येक कालाणु स्वतंत्र है। इसलिए काल अप्रदेशी है। षड्द्रव्यों में केवल एक काल द्रव्य ही अस्तिकाय रहित है। काल अमूर्त है, अरूपी है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित है। चर्म चक्षुओं से अगम्य है।

Mobile - समय गतिशील है। समय का पहिया अनवरत गतिमान है। समय नदी की धारा है जो कभी नहीं रुकती। अंग्रेजी में कहावत है–Time and tide wait for none. समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। भगवान महावीर ने कहा–

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ।

जो रात्रियां बीत गईं, वे पुनः नहीं लौटती। दुनिया भर में चार वस्तुएं ऐसी हैं, जो पुनः नहीं मिलती।

1. बोला गया शब्द, 2. कमान से निकला तीर, 3. गुजरी हुई जिंदगी और 4. खोया हुआ अवसर।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

टिक टिक करती घड़ी सुनाती।
बीती घड़ियां लौट न आती।।

देवता रूठ जाए तो उसे मना सकते हैं, पर समय देवता रूठ गया तो उसे नहीं मना सकते। समय अनमोल धन है। समय के मूल्य को जानने वाला मूल्यवान बन जाता है। समय का उपयोग करने वाला उपयोगी बन जाता है। समय वह चंद्रकांत मणि है, जिसका उपयोग करने वाला मालोमाल बन जाता है। भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को संबोधित करते हुए उत्तराध्ययन के एक ही अध्ययन में अनेक बार कहा–

समयं गोयम! मा पमायए। -हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद मत कर। 'खणं जाणाहि पंडिए' -क्षण को जानने वाला पंडित कहलाता है। आचार्य तुलसी ने गुनगुनाया– समय का अंकन हो। अनुभवियों ने शिक्षा देते हुए कहा–

काल करै सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।।

आज का मानव बहुत व्यस्त है, पर सचाई यह है कि वह अस्त-व्यस्त है। उसने महावीर के सूक्त 'काले कालं समायरे' को भुला दिया है।

आज समय प्रबंधन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। महावीर ने 2600 वर्ष पूर्व अप्रमत्त रहकर कार्य करने की प्रेरणा दी–'उट्ठिए णो पमायए।' मेधावी काव्यशास्त्र पढ़ने में समय का सदुपयोग करता है जबकि मूर्ख व्यसनों में, कलह, निद्रा में समय को व्यर्थ गंवा देता है। आलसी कहते हैं–

आज करै सो काल कर, काल करे सो परसों।
इतनी भी क्या जल्दी है, अभी तो जीना है बरसों।।

समय सबके लिए समान है। महापुरुषों के सामने पचीस घंटे नहीं होते। समय का सदुपयोग ही व्यक्ति को महान् बनाता है। समय को नष्ट करने वाला स्वयं नष्ट हो जाता है। समय की गतिशीलता को पकड़ने का अर्थ है–समय का सही उपयोग।

Endless - समय अनंत है। अनंत यानी जिसका कभी अंत नहीं होता। काल अनंत भी है, अनादि भी। समय शाश्वत है, था और रहेगा। अनंत में चाहे अनंत का योग करो या घटाओ, गुणा करो या भाग दो, अनंत ही शेष रहता है। समय अनंत द्रव्यों पर वर्तन करता है। अतः अनंत है । अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी बीत गए, अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी बीत जाएंगे, फिर भी समय चलता रहता है। आकाश का एक नाम है अनंत। जिसका न ओर है, न छोर। काल अनुपमेय है। जिसका न आर है, न पार। आइए, इस नए वर्ष का पावन संदेश सुने, समझें और जीने का अभ्यास करें।

नव वर्ष का संदेश है– समय को पहचानो ।

- मैं सूक्ष्म हूं, मेरी सूक्ष्मता को जानो।
- मैं गतिशील हूं, मेरे साथ चलने का प्रयास करो।
- मैं अनंत हूं, तुम भी अनंत गुण संपन्न बनो। ❑

अनेकान्त प्रिय आचार्य श्री भिक्षु

मुनि मदनकुमार

भगवान महावीर अनेकान्तवादी थे। उनका दर्शन अनेकान्त से अनुप्राणित है। अनेकान्त तीसरा नेत्र है और उससे सत्य उपलब्ध होता है। जो अनेकान्त दृष्टि को जीना और जानना चाहे, उसे आगम-साहित्य का अनुशीलन करना चाहिए। ईसा की अठारहवीं सदी में आचार्य श्री भिक्षु अवतरित हुए, जो भगवान महावीर की वाणी के प्रति सर्वात्मना समर्पित थे। उन्होंने अपने साहित्य में अनेकान्त का भरपूर प्रयोग किया। उनके पास दृष्टि और आचार की शुचिता थी, जो विलक्षण थी और तीर्थंकर युग की याद दिलाने वाली थी। उस परम पुनीत पुरुष की विमलता जैन परंपरा की अद्भुत घटना है। उनके बौद्धिक और आध्यात्मिक वैभव का अनेक महानुभाव लोहा मानते हैं। उनका यशस्वी, तपस्वी और वर्चस्वी जीवन एक जबरदस्त प्रेरणा है। उनके आचार और विचार की निर्मलता उत्कृष्ट बिंदु पर पहुंच गई थी, इसलिए वे लाखों लोगों के अन्तर्यामी, आराध्य और हृदय सम्राट बन गए। उनका साहस और सौन्दर्य अप्रतिम था। वे अहिंसा के महान् पुजारी बने और अनेकान्त के महान् भाष्यकार। उनका जिनवाणी पर समर्पण बेजोड़ था। वास्तव में वे भगवान महावीर के अनन्य उपासक और उनकी वाणी के महान् प्रस्तोता थे। आगम-वाणी के सार को खींचना और जन भाषा में उसे सरसता एवं सरलतापूर्वक प्रस्तुत करना उनकी अद्वितीय कला थी। शास्त्रों के मर्म को समझना ही दुर्गम है, फिर उसे वाणी का विषय बनाना या लेखनी का विषय बनाना महादुष्कर कार्य है। उनके विराट व्यक्तित्व और साहित्यिक साधना को देखकर यों कहना सटीक है कि वे विश्व की महानतम विभूति थे। उनकी इस विलक्षणता को देखकर ही प्रज्ञा के शिखर पुरुष आचार्य महाप्रज्ञ ने सिरियारी के एक भव्य समारोह में कहा था कि आचार्य श्री भिक्षु तेरह महान् बलों के समवाय पुरुष थे। वे तेरह बल हर व्यक्ति के जीवन में विकसित होने चाहिए। वे तेरह बल हैं– 1. श्रद्धा बल 2. संकल्प बल 3. मनोबल 4. सिद्धांत बल 5. संयम बल 6. तपो बल 7. वैराग्य बल 8. क्षमा बल 9. अतीन्द्रिय बल 10. बुद्धि बल 11. वाग् बल 12. समता बल और 13. संविभाग बल।

भिक्षु शासन की साधना के ये तेरह स्तंभ हैं जिनके आधार पर यह तेरापंथ रूपी महल सुस्थित है, सौन्दर्य युक्त है और स्वनामधन्य है। तेरापंथ नाम गुणनिष्पन्न नाम है। आचार्य श्री भिक्षु ने तेरापंथ की गुणनिष्पन्न व्याख्या करते हुए कहा था कि जो व्यक्ति पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति की अखंड आराधना करता है वह तेरापंथी साधु है तथा उन्हें जो अपना आराध्य मानता है वह तेरापंथी श्रावक है। इस तरह आचार की उच्चता और निर्मलता के आधार पर ही तेरापंथ का निर्माण हुआ है। इस गरिमामय तेरापंथ की व्याख्या सुनकर अनेक लोग अभिभूत हुए हैं। एक बार दिल्ली में आचार्यश्री तुलसी ने तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष स्वर्गीय अनंतशयनम् आयंगार को तेरापंथ के इस अर्थ की अवगति देते हुए आचार्यश्री भिक्षु के शब्दों का उल्लेख किया–'हे प्रभो! यह तेरापंथ- प्रभो! यह आपका पंथ है। हम सब इस पर चलने वाले पथिक हैं।' इस व्याख्या ने आयंगारजी के हृदय को इतना प्रफुलित किया कि वे प्रसन्नता से उछलते हुए बोले– It is my path. 'इट इज माई पाथ'–यह मेरा पंथ है, यह मेरा पंथ है।

आचार्य श्री भिक्षु का श्रद्धा बल

आचार्य श्री भिक्षु की आगम-वाणी पर अगाध श्रद्धा थी। इस श्रद्धा के बल पर ही उन्होंने विक्रम संवत् 1815 के राजनगर चातुर्मास में दो बार आगमों का

पारायण किया और यह निर्णय लिया कि आगमानुमोदित आचार का पालन करना है। इस दृढ़ इच्छा–शक्ति से ही उन्होंने यह अटल चिन्तन प्रस्तुत किया था कि-'मर पूरा देस्यां पर आत्मा रा कारज सारस्यां।' ऐसी घनीभूत श्रद्धा सचमुच! दुर्लभ होती है। भगवान महावीर ने श्रद्धा को परम दुर्लभ कहा है। जिन वाणी के प्रति आचार्य भिक्षु की श्रद्धा को अद्वितीय कहा जा सकता है जिसके बल पर उन्हें सत्य और तत्त्व की महान् प्राप्ति हुई है। उनका समग्र वाङ्मय सत्य और तत्त्व की अद्‌भुत व्याख्या है जिसे पढ़ने और सुनने से अपार ज्ञान और आनंद की अनुभूति होती है।

आचार्य भिक्षु का संकल्प बल

आचार्य भिक्षु का संकल्प बल अटूट था। संकल्प के बिना साधना और सिद्धि तथा लेखन और वक्तृत्व संभव नहीं है। आचार्य भिक्षु की इन चारों विषयों में सुंदरतम गति रही है। इतना ही नहीं, अपने जीवन काल में इन्हें पूर्णता प्रदान की है। साधना उनकी उत्कृष्ट थी, अतः उन्हें समाधि का अनुभव हुआ तथा लेखन उनका विलक्षण था, अतः उन्हें अमरत्व प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने जीवन के संध्या काल में कहा था कि मेरे जीवन में कोई कमी नहीं रही। जो करना था और करणीय था वह मनोयोग से किया। संलेखना, संथारा, शल्य-मुक्ति और आराधक पद–ये साधक के लिए अवश्य करणीय होते हैं। आचार्य भिक्षु ने इन चारों का समवतार कर धन्यता का अनुभव किया। उनका संपूर्ण जीवन सार्थकता का उत्कर्ष कहा जा सकता है। अर्हता और पराक्रम का ऐसा मणिकांचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। अपने शौर्य और वीर्य से आचार्य भिक्षु इक्षुवत् बन गए।

आचार्य भिक्षु का मनोबल

आचार्य भिक्षु का मनोबल प्रबल और प्रशस्त था। वे किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं हुए। उनके सामने आहार, पानी, वस्त्र, स्थान आदि की कठिनाइयां बहुत थी, पर वे न कभी घबराए और न भयभीत हुए। उनका मनोबल असाधारण था, अन्यथा इतने संकटों को झेलना असंभव जैसा कार्य है। संघर्ष ने उन्हें दृढ़ता प्रदान की और वे सहते-सहते दृढत्तम पुरुष बन गए। विरोध की आग झेलकर वे महामहिम बन गए। हर परिस्थिति में उनकी मनःस्थिति का चित्रण करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा था–

मौत से मरता नहीं मैं, मौत मुझ से मर चुकी है।
मौत से डरता नहीं मैं, मौत मुझ से डर चुकी है।।

आचार्य भिक्षु का सिद्धांत बल

आचार्य भिक्षु का सिद्धांत बल असीम था। वे सारे संसार का कल्याण चाहते थे। वे सत्य के प्रति सदा आग्रहशील रहे और सारी बुद्धि सत्य के प्रति लगा दी। उन्होंने सत्य को पकड़ा, सत्य के लिए अनेकानेक कष्ट सहन किए और सत्य के लिए बलिदान किया। आचार्य भिक्षु ने सोचा कि पूजा–प्रतिष्ठा अनंत बार पाई है, किन्तु सत्य की प्राप्ति कठिन है। पूजा-प्रतिष्ठा बड़ी नहीं है। सत्य रहेगा तो प्रतिष्ठा दौड़कर आ जाएगी। आग्रह सत्य का ही होना चाहिए। इस विचारधारा से चल पड़े थे उन राहों पर, जहां सत्य का आलोक था, साधना की गहराई थी और आचार की ऊंचाई थी। यद्यपि इस पथ में अनेक संघर्षों व विरोधों के काले बादल उमड़-घुमड़ कर आए, पर वह सहास्रांशु हर कुहासे को चीरता हुआ जनमानस में आलोक भरता गया। उनके आलोकित पथ-तेरापंथ के कुछ सूत्र ये हैं–

- सब जीवन समान है। एकेन्द्रिय जीवों को मारकर पंचेन्द्रिय जीवों का पोषण करना धर्म नहीं है तथा पुण्य भी नहीं है।
- पुण्य का स्वतंत्र बंध नहीं होता, वह शुभ योग के द्वारा ही निर्जरा के साथ होता है। अतः निर्जरा की करणी और पुण्य की करणी दोनों ही निरवद्य है।
- मिथ्यात्वी की भली करणी जिनाज्ञा में है। उसके सकाम निर्जरा भी हो सकती है। वह मोक्ष का देशाराधक हो सकता है।
- मिथ्यात्वी के प्रत्याख्यान संवर धर्म की अपेक्षा से दुष्प्रत्याख्यान है, किन्तु निर्जरा धर्म की अपेक्षा से निर्मल प्रत्याख्यान है।
- मिथ्यात्वी का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान और क्षायोपशमिक भाव निरवद्य है।

- आत्म-रक्षा दया है। जीव-रक्षा प्रासंगिक है। आत्म-रक्षा ही जिनाज्ञा में है।
- भय, प्रलोभन या बलप्रयोग से धर्म नहीं हो सकता, धर्म केवल हृदय-परिवर्तन से ही संभव है।
- पुण्य बंध की अपेक्षा से शुभ योग आश्रव है तथा आत्म-विशोधि की अपेक्षा से शुभ योग निर्जरा है, किन्तु शुभ योग संवर कदापि नहीं है।
- जहां संयम का पोषण है वह दान सुपात्र दान और निरवद्य दान है। वही निर्जरा और पुण्य बंध का हेतु है। असंयमी दान संसार वृद्धि का हेतु है और सावद्य है। संयमी दान मोक्ष का मार्ग है और असंयमी दान संसार का। ये दोनों विपरीत दिशागामी है।
- धर्म खरीदने की वस्तु नहीं है, अतः धन से धर्म और पुण्य नहीं हो सकता।
- अनुकंपा सावद्य और निरवद्य दोनों होती है। लौकिक अनुकंपा सावद्य है और लोकोत्तर अनुकंपा निरवद्य।

आचार्य श्री भिक्षु का संयम बल

आचार्य भिक्षु का संयम बल प्रकृष्ट और अनुत्तर था। उनका वाणी-संयम और इन्द्रिय-संयम प्रखर था। वे समिति-गुप्ति की साधना में अत्यन्त सजग थे। उनकी चारित्रिक निर्मलता विलक्षण थी। समय का क्षण-क्षण उपयोग करना और सतत अप्रमत्त रहना उनकी विशिष्ट जीवन शैली थी। वे श्रम और साधना के देवता थे। उनके साधनामय जीवन का व्यापक प्रभाव था। उनकी गौरव गाथा सुदूर तक फैल चुकी थी। दिगम्बर आम्नाय के लोग भी उनकी साधना से प्रभावित थे। उस समय के धार्मिक परिवेश के वे शीर्षस्थ पुरुष बन गए थे। वे अपनी उत्कृष्ट संयम साधना से स्वनामधन्य आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। प्रवचन, साहित्य, देशाटन और शिष्य संपदा से उनका संयम बल अत्यंत तेजस्वी और प्रभावशाली बन गया।

आचार्य भिक्षु का तपोबल

आचार्य भिक्षु का तपोबल समुन्नत था। उनकी आत्मा तपस्या की दीप शिखा से प्रज्वलित थी। दीक्षा से पूर्व और दीक्षा के बाद वे अपनी आत्मा को तपस्या से भावित करते रहे। उनकी तपस्या निराली थी। उनकी तपोनिष्ठा का उल्लेख करते हुए जयाचार्य ने लिखा है–

पांच वर्ष पहिछाण, अन्न पिण पूरा ना मिल्यो।
बहुलपणे वच जाण, घी चौपड़ तो जिहाइ रह्यो।।

जयाचार्य के शब्दों में उन्हें पांच वर्ष तक भरपेट भोजन नहीं मिला। घी आदि की तो बात कहां थी? कैसी थी उनकी तपस्या और तितिक्षा! बड़ी विरल थी उनकी तपस्या और तितिक्षा! 'तवोत्ति अहियासये'- भोजन न मिला तो सहज ही तप हो गया, यों मानकर उसे सहन कर लेना आचार्य भिक्षु का जीवन सूत्र बन गया था। भाव दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों में तो उन्होंने तप और आतापना का मार्ग ही चुन लिया था। यों कहना चाहिए कि वे जैन शासन के एक विशिष्ट तपस्वी आचार्य थे। उनकी लोमहर्षक तपस्या श्रद्धालु जनता के मन में रोमांच पैदा करने वाली है।

आचार्य भिक्षु का वैराग्य बल

आचार्य भिक्षु का वैराग्य बल उत्कर्ष प्राप्त था। अत्यन्त वैराग्य भाव से उन्होंने मुनित्व स्वीकार किया था। अनेक कसौटियों पर अपने आपको कसा। केर के ओसावन को ताम्र पात्र में रखकर और फिर उसे पीकर अपनी कष्ट-सहिष्णुता की कसौटी की थी। उनका वैराग्य सदा प्रवर्द्धमान रहा। जनभावना को ध्यान में रखकर वे कल्पनीय वस्त्र आदि को भी अस्वीकार कर देते थे। मूलतः उनका आचार और विचार अत्यन्त पवित्र था। उनके संदर्भ में पुर में आचार्य जयमलजी ने प्रवचन सभा में कहा था कि हम भीखणजी को श्रेष्ठ साधु मानते हैं। आचार्य भिक्षु की आचार निष्ठा और वैराग्य से अनेक लोग प्रभावित थे और वे सुभक्त बने थे। आचार्य भिक्षु ने अपने भाव संयम-साधना का शुभारंभ तेले के तप से किया था और जीवन का समापन त्रिदिवसीय संलेखना–संथारे में किया था। वैराग्यमय जीवन से उनका संपूर्ण जीवन मंगलमय बन गया था। 'मंगलं मतिमान् भिक्षु' बनकर वे सारे संसार के लिए उद्योतकारी और कल्याणकारी बन गए।

आचार्य भिक्षु का क्षमा बल

आचार्य भिक्षु का क्षमा बल अद्वितीय था। वे हर परिस्थिति को सहना भी जानते थे और विरोध को विनोद में बदलना भी जानते थे। यों लगता है कि उन्होंने क्षमा धर्म की आराधना कर अपूर्व निर्जरा की। क्षमाशील व्यक्तित्व के कारण आचार्य भिक्षु लाखों लोगों के हृदय-सम्राट् बन गए। अपमान, आक्रोश, अपशब्द श्रवण की परिस्थिति उनके सामने अनगिनत बार आई होगी, पर वे हर बार कुंदन बनकर चमक उठे। मुक्के और ठोले के प्रसंग भी आए होंगे, पर उनकी मनःस्थिति सदा स्थितप्रज्ञ की बनी रही। स्थान छुड़वाना, गांव से निकालना, चातुर्मास में विहार करवा देना, भोजन-पानी में अंतराय डालना, दीक्षा में रुकावट पैदा करना आदि अमनोज्ञ स्थितियां भी उन्हें कभी क्षुब्ध या विचलित नहीं कर सकी। क्षमा धर्म की आराधना के कारण उनकी आत्मा सदा परमानन्द में रही और पौरुष को प्रदीप्त करती रहीं। यों कहा जा सकता है कि वे क्षमा के सागर और क्षमा के अवतार थे। उनकी कष्ट-सहिष्णुता भगवान महावीर की याद दिलाने वाली है। उनकी कष्ट-सहिष्णुता की गौरवगाथा गाते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है–

- जन्म पूर्व समाधिमय था, मरण पूर्ण समाधिमय था।
  व्याधि आधि उपाधि में भी, सन्तुलन समरस निहारा।
  उसने जितना सहा, किसी से सहा नहीं जा सकता।
  जो बलिदान किया, शब्दों से कहा नहीं जा सकता।
  जिसकी निर्भयता से थीं भयभीत सभी विपदाएं।।
- चूहा बिल्ली रो चल्यो रे, सदियां लग हुड़दंग।
  पर बाबै री बज्जर छाती, झुकी न झेठै जंग।।
- निज निन्दा कानां सुणी रे, रह्यो प्रसन्न-मन पूज।
  गुण सुण नहिं कहिं हृदय फुलायो, सत्पुरुषां रो सूझ।।

आचार्य भिक्षु का अतीन्द्रिय बल

आचार्य भिक्षु अतीन्द्रिय बल संपन्न महापुरुष थे। उनका मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान बहुत निर्मल था। निर्मलता के कारण ही उन्हें अन्त समय में अनशनावस्था में अवधिज्ञान पैदा हो गया था। मूलतः उनकी चारित्रिक निर्मलता उत्कृष्ट थी, अतः उनके लिए अतीन्द्रिय चेतना का जागरण सहज संभव था। वे होने वाली घटना को पहले ही जान लेते थे। किसी ने पूछा–'भीखणजी! बताओ, घोड़े के पैर कितने होते हैं?' उन्होंने गिनते हुए कहा–'एक, दो, तीन और चार।' वह बोला–'मैंने सुना था कि भीखणजी बहुत बुद्धिमान हैं। फिर इतना समय क्यों लगा? भिक्षु स्वामी बोले–'घोड़े के पैर बताना तो आसान है, पर तुम आगे मुझ से कनखजूरे के पैर पूछ लेते तो?' वह व्यक्ति बोला–'महाराज! क्षमा करना। सोचकर तो मैं यही आया था।' ऐसे अनेक घटना प्रसंग हैं जिनसे उनके अतीन्द्रिय बल का बोध होता है।

आचार्य भिक्षु का बुद्धि बल

आचार्य भिक्षु का बुद्धि बल असीम था। हर प्रश्न का उत्तर देना और अगले को निरुत्तर कर देना इसमें वे अत्यंत निपुण थे। आगम का तलस्पर्शी अध्ययन होने के कारण वे सिंह की भांति दुष्प्रघर्ष, अनाक्रमणीय और संघातनीय जन मिलन के केन्द्र बन गए थे। ख्यातनामा लोग उनसे संवाद और चर्चा करने के लिए उत्कंठित रहते थे।

सिरियारी में आचार्य भिक्षु चातुर्मास कर रहे थे। जोधपुर नरेश विजयसिंहजी श्रीनाथजी के दर्शनार्थ नाथद्वारा जा रहे थे। सिरियारी में उनका ठहरना हुआ। नरेश के सामन्त और दरबारी भिक्षु स्वामी के दर्शनार्थ आए, क्योंकि उन्होंने पहले से उनकी खूब तारीफ सुन रखी थी। उनके मन में उनकी एक ज्ञानी सन्त की छवि थी। उन्होंने सहज प्राप्त अवसर का लाभ उठाते हुए अनेक तात्त्विक और आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। जीव और जगत् विषयक उनके प्रश्न बड़े गंभीर थे। जैसे–पहले मुर्गी हुई या अंडा? आचार्य भिक्षु ने उन्हें बड़े ही यौक्तिक ढंग से उत्तर दिए। वे संतुष्ट और प्रसन्न हो गए तथा प्रशंसा के स्वर में बोले-'हमने अनेक स्थलों पर ये प्रश्न पूछे हैं, परन्तु आप जैसे युक्तिसंगत उत्तर अन्य किसी ने नहीं दिए। आपकी बुद्धि बड़ी भारी है। वह तो ऐसी है कि यदि आप किसी राजा के दीवान होते तो उसके राज्य को बढ़ाकर साम्राज्य बना देते। ❑

शेषांश अगले अंक में...

आत्मीयता की झील : अनुग्रह के फूल

साध्वी शुभप्रभा

वन्दना – अभिवन्दना

☆☆☆

कुशल व्यवस्था, प्रिय अनुशासन,
करुणा, धैर्य परख, संवेदन।
सहनशील सम, सेवा श्रम से,
गरिमामय पद पर आरोहण।।

एक चीनी कहावत है—'जब अंडे को बाहर से तोड़ा जाता है तो एक जिंदगी खत्म हो जाती है लेकिन जब एक अंडा भीतर से टूटता है तो एक जिंदगी शुरू होती है। सच है—महानता भीतर से ही आविर्भूत होती है। जो भीतर में जितना अधिक गहराई में जाता है, पैठता है, गोते लगाता है, खोजता है, उसकी उपलब्धियों के आंकड़े भी उसी अनुपात से ज्यादा होते जाते हैं।

भीतर में जाने का मतलब है अपनी हर क्रिया को जानते हुए तथा जागते हुए करना। राग-द्वेष की ऊर्मियों को उठते हुए देखना, शुभ और अशुभ कर्म की लीलाओं का अनुभव करना। भीतर की खोज अनवरत जारी है। फिर वह भौतिक/पदार्थ जगत् के माध्यम से हो या चेतना/अध्यात्म जगत् से। मंजिल उसी का आह्वान करती है, अपने पास बुलाती है जो प्रतिक्षण भीतर से जुड़ा रहता है।

अपने अस्तित्व की खोज में संलग्न एक व्यक्तित्व का नाम है साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा। मैंने सुना है कि जब कला ने किलकारी भरी तब उसके आसपास के परिवेश में एक उदासी थी—उम्मीदों के पर कट जाने की, चाह को राह न मिलने की, कुलदीपक को न पाने की। उस समय शायद यह कोई नहीं सोच सका कि यह तो प्राची में फैली अरुणिमा है जो इस बात की संसूचक है कि सूर्योदय होने वाला है।

बालवय में ही कला ने अपने अस्तित्व को इस कदर विस्तार दिया कि सब देखते ही रह गए। घर के छोटे-मोटे काम करना, भाई-बहनों की परवरिश करना, अनावश्यक न घूमना, न बोलना, न देखना और न सुनना। अपने आप में ही मस्त रहना। बड़ों को बहुमान देना, छोटों से स्नेह रखना, दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानना आदि संभवतया यही वह पृष्ठभूमि है जहां स्वत्व की लता फैलती गई।

मेहरबान है प्रकृति

मुझे तो ऐसा लगता है कि कला की स्निग्ध चांदनी को विस्तीर्ण करने में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है अथवा यह कहा जा सकता है कि प्रकृति शुरू से ही उस पर बड़ी मेहरबान रही है। धरती ने उसे सहनशीलता की चुनरिया ओढ़ाई। समन्दर ने अतल गहराई सौंपी। आसमां ने सबको अपने अंक में समेटने की प्रक्रिया बताई। पर्वतों ने हृदय को चट्टान सा मजबूत बनाए रखने की सीख दी। काले-कजरारे बादलों ने सजल (दयालु) बने रहने का नुस्खा हाथों में थमाया। सितारों ने अपनी चमक नयनों में भर दी। पवन ने चरैवेति-चरैवेति का वरदान दिया। सूरज ने हर पल पर दस्तखत करने की कलम पकड़ाई। चंदा ने शीतलता और स्निग्धता से मस्तिष्कीय तन्तुओं को उपवन के रंग-बिरंगे फूलों की अपनी महक उपहार में दी। बहारें अपनी मस्ती देकर कृतार्थ बनीं। वृक्षों ने सब कुछ बांटने की नेक सलाह दी। झरनों ने उपयोगिता बनाए रखने का मंत्र फूंका।

इन सबने मिलकर ऐसे सद्‌गुणों से कला की झोली भरी कि वह आत्मीयता की खूबसूरत झील बन गई।

मील का पत्थर

वि. सं. 2024 माघ कृष्णा त्रयोदशी को तेरापंथ धर्मसंघ के नवमाधिशास्ता परमपूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने कष्ट संपदाओं- अनुत्तर संयम, अनासक्ति, अनाग्रह, आगम-अनुरागी, अहर्निश सजग, आत्मानुशासन, अपेक्षा और उपेक्षा से असंपृक्त, आत्मीयता के आलोक से आलोकित साध्वी कनक़प्रभा को साध्वीप्रमुखा का दायित्व सौंपा। वह पल बहुत शुभ था। तभी तो उद्‌घोषणा होते ही मंगल कामनाओं का उजास फैलने लगा। मंगल भावों की समीर बहने लगी। अनुशासित धूप को पाकर मन-भ्रमर मंगल गुनगुनाहट करने लगा। मानस-सरोवर में विनय और वात्सल्य के कमल विहंस उठे। शक्ति संपन्न गुरु की करशाखा के पौरवों, पैर के अंगूठों, नयनों तथा मुखकमल से होते शक्तिपात को आपने यत्नपूर्वक सहेज कर रखा तथा सदा उसे ही विकास-पथ का मील का पत्थर माना।

आखिर क्यों?

यदा–कदा मन की मरुभूमि में जिज्ञासा का अंकुर उगता है कि साध्वीप्रमुखाश्रीजी के मंगल उपनिषद् में जो एक बार उपस्थित हो जाता है, वार्तालाप के कुछ क्षण उपलब्ध कर लेता है, वह सदैव उनकी आत्मीयता का कायल बन जाता है, उनमें वह मातृत्व का दर्शन करता है, वात्सल्य भाव से भीग जाता है। अपनी आपबीती सुनाने, सुख-दुःख की बातें बताने में संकोच या भय का अनुभव नहीं करता। आगे-पीछे अथवा किंतु-परंतु या क्यों क्या का प्रश्नचिह्न उसके सामने खड़ा नहीं रहता। अपनी जीवन-पोथी के पृष्ठ खोलने में देरी नहीं करता। आखिर क्यों?

प्रश्न का उत्तर मिला पूज्य गुरुदेवश्री की इन पंक्तियों में—

वाणी के पहले ही जिसका व्यवहार स्वयं जो बोल उठे,
पुस्तक के पहले ही जिसका आचार स्वयं जो बोल उठे।
कार्यों के पहले ही जिसका संस्कार स्वयं जो बोल उठे,
जिसके संक्षेपी शब्दों में विस्तार स्वयं जो बोल उठे।।

अध्यात्म की इस सचेतन झील में व्यवहार, आचार, संस्कार और विस्तार की रमणीयता को जिसने देखा, वह अभिभूत हो गया, जिसने आशीर्वाद पाया, वह निहाल हो गया। जिसने उसका स्पर्श पाया, उसके तो भाग्य की बात ही क्या? अनगिन प्रसंग सामने हैं, पर निदर्शन के लिए कुछेक ही यहां अभिलेख्य हैं।

चेतना लौट आई

प्रसंग 1992 की प्रेक्षायात्रा का है। 'प्रेक्षायात्रा आई है : नई चेतना लाई है' की अनुगूंज जोरावरपुरा पहुंची। लम्बा विहार, लम्बा स्वागत समारोह, लम्बा प्रवचन। फलतः हमारी भूख-प्यास भी लम्बी हो गई, पर क्षुधा, विपासा, सर्दी-गर्मी, नींद-जागरण आदि पर विजय प्राप्त महाश्रमणीजी भक्तों की भावनाओं को पूर्ण करने हेतु घर-घर में पधारने लगीं। हम चार-पांच साध्वियां साथ में थीं। अचानक साध्वी शशिप्रभाजी को चक्कर आ गया। वे चेतना–शून्य-सी हो गई। ज्योंही आपको जानकारी मिली, आप तत्काल वहां पधारी। बिना लुंकार के ही नीचे बैठ गई। उनका सिर गोद में रखा। नाड़ी देखी। हाथ-पैर ठंडे हो गए थे। मंत्र-जप के साथ हाथों की मालिश की।

अमर्ष-औषधि का चमत्कार था या स्पर्श चिकित्सा का प्रभाव, प्राणवान हाथों का स्पर्श पाते ही उन्होंने आंखें खोलीं। उन्हें पानी पिलाया। उस अमृतपान से साध्वीजी ने जो आत्मीय सुख, आनंद, शांति और तुष्टि की अनुभूति की, वह अनिर्वचनीय थी।

गरमाहट आज भी

दूसरा प्रसंग–आचार्यश्री महाप्रज्ञ अहिंसा यात्रा के दौरान बोरावड़ पधारे। कड़ाके की ठंड थी। इस मौसम में हाथ-पैर वैसे ही सुन्न हो जाते हैं। उस पर वस्त्र प्रक्षालन किया जाए तो कभी-कभी बर्फ जैसे जड़ीभूत हो जाते हैं। उस दिन शैक्ष साध्वी सुमति प्रभाजी के साथ भी ऐसा ही हुआ। अपने नित्यक्रम के अनुसार महाश्रमणीजी व्याख्यान के पश्चात प्रायः पूज्यवर की उपासना में पधारती हैं। समय होते ही साध्वीजी आपके उपपात में आईं। उनके हाथ बहुत ठंडे थे। आपने उनके दोनों हाथ अपने हाथों में लिए और कुछ क्षणों तक धीरे-धीरे उन्हें सहलाया। संघर्षण से उनके हाथ गर्म हो गए। वह आत्मीय गरमाहट साध्वीजी आज भी महसूस करती हैं।

शिखर और तलहटी

तीसरा प्रसंग–सन् 1999 लाडनूं का है। ब्रह्ममुहूर्त का समय था। साध्वीप्रमुखाश्रीजी और मैं दोनों ही प्रज्ञा हॉल में थीं। सदा की भांति स्वाध्याय का क्रम चल रहा था। अचानक मेरा जी घबराने लगा। वमन जैसी स्थिति हो गई। मैंने निवेदन किया–'मैं एक बार बाहर जा रही हूं। शायद वमन होगा।' साध्वीप्रमुखाजी ने इधर-उधर देखा। दरवाजे तक आईं। बरामदे में दो समणीजी स्वाध्याय कर रही थीं। आपश्री को खड़े देखकर वे उधर आईं। आपने फरमाया–'शुभप्रभाजी का जी घबरा रहा है।' इतना सुनते ही दोनों समणीजी मेरे पास पहुंच गईं। वमन होने के बाद मैं लौट आई। सारा क्रम यथावत् चला। प्रतिक्रमण का समय हुआ। आपने फरमाया–'आज तुम्हारे ठीक नहीं है। लो, मैं तुम्हें प्रतिक्रमण सुनाती हूं।' कहां शिखर और कहां तलहटी! मैंने निवेदन किया–'मेरे अब ठीक है। मैं आपके साथ ही प्रतिक्रमण कर लूंगी।'

आत्मीयता से लबालब भरी इस सचेतन झील में अनुग्रह के रंग-बिरंगे खिलनेवाले ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनकी छुअन ही शक्ति, स्फूर्ति, संवेग और संतुष्टि का संचार करती है।

वस्तुतः चैतन्य महारश्मि साध्वीप्रमुखाश्रीजी की जीवन-गाथा का प्रत्येक पहलू स्मरणीय, श्लाघनीय और अनुकरणीय है। 26 नवम्बर 2012 जसोल में स्वयं परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमण ने प्रवचन के समय हाजिरी में फरमाया–'साध्वीप्रमुखाजी साध्वियों की चित्त समाधि, उनकी अपेक्षा और संघीय आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए साध्वियों की देखरेख करती हैं।' यह सब इसलिए संभव है कि उनके चिन्तन और कर्म में त्वदीय और मदीय का भेद नहीं है। उनकी चेतना में भक्ति, शक्ति, अनुरक्ति और विरक्ति का अविरल प्रवाह है। वे शब्दों की शवपूजा नहीं, किन्तु भावों के रचना–संसार में परिभ्रमण करती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वे कांटों से क्लान्त और फूलों से भ्रान्त नहीं होती। आपश्री की यह समरसता, साम्यभाव, संतुलित चेतना हम सबमें संक्रान्त हो, बस यही काम्य है।

• *साध्वीप्रमुखा के चयन दिवस पर हार्दिक अभिवंदना*

तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा समाज की शीर्षस्थ संस्था है। संप्रदाय को सामाजिक पहचान देने में अनुशासनात्मक, संगठनात्मक एवं रचनात्मक कार्यों के सम्पादन में जिसकी अहम भूमिका रही है। जिसके मंच से आज संस्कार निर्माण से लेकर अध्यात्म विकास तक की अनेक रचनात्मक गतिविधियों का संचालन-संपादन होता रहा है। जिस महासभा का उदय भी युग पुरुष आचार्य तुलसी के जन्म के साथ-साथ हुआ, इसलिए वर्ष 2013 में दोनों का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है।

महासभा का सौ साल का अपना इतिहास है। इसने संघर्षों के बीच अपनी पहचान बनाई है। सेवा, संगठन, एकता के साथ संघीय और सामाजिक भूमिका से जुड़े अनेक दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। इसने समाज के अनेक सेवाभावी, दायित्वशील संघहितैषी कर्मठ कार्यकर्ताओं को अपने साथ जोड़ा है।

उम्र से और कार्यकारी कद से ऊंची महासभा तेरापंथ संघ और समाज का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इसका शैशव संघर्ष-भरा है, यौवन क्रांतिकारी है, प्रौढ़ता योजनाबद्ध है और वृद्धत्व तेजस्विता से दीपित है। इतिहास बन जाना एक बात है पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके कर्तृत्व की स्वीकृति होते रहना दूसरी बात है। अतः जैन भारती 2013 फरवरी से महासभा के जीए गए अनुभवों के साथ 'कल, आज और कल' का पूरा इतिवृत्त पाठकों तक क्रमशः पहुंचाने की शुरुआत कर रही है।

पूज्यप्रवरों की प्रेरणा से महासभा के इतिहास का दुरूह लेखन कार्य श्रद्धेय मंत्रीमुनि सुमेरमलजी, (लाडनूं) के द्वारा सम्पन्न हुआ है और इसे सम्पादित किया है युवामनीषी मुनि श्री उदित कुमारजी ने।

दस-परिच्छेदों में सजाए गए इतिहास को पढ़कर पाठक वर्ग जान पाएंगे कि इसने विकास का सफर कैसे तय किया? सफलताओं के शिखर तक पहुंचने में कैसे-कैसे संघर्ष बीच में आए? संघीय विकास में क्या योगदान रहा? किन-किन श्रावकों का योगदान जुड़ा रहा, वर्तमान में सम्पादित कार्यक्रमों की क्या योजनाएं हैं, संकल्पित भविष्य की क्या संभावनाएं हैं आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर जैन भारती के मार्च अंक से क्रमशः पाठक वर्ग पढ़ पाएंगे।

इस अंक में आचार्य तुलसी का जो पहला संदेश 12 फरवरी 1959, सेंथिया में महासभा के 46वें अधिवेशन पर दिया गया था, उसे महासभा के 99वें वार्षिक साधारण सभा के आयोजन पर दिया जा रहा है—

महासभा अधिवेशन में आचार्यश्री तुलसी का प्रथम वक्तव्य

'महासभा के अधिवेशन में बोलने का यह मेरा पहला ही अवसर है। कारण इससे पहले किसी ने कभी ऐसी मांग भी नहीं की थी। वरना जब मैं दूसरों के अधिवेशनों में शिक्षा देता हूं

तो फिर अपने सामाजिक कार्यक्रम में क्यों नहीं बोलूं। महासभा एक महत्त्व की संस्था है। कारण, इसका संगठन बहुत दृढ़ है। बुजुर्ग श्रावकों ने जिस उद्देश्य से इसकी नींव रखी, उसी पर यह चल रही है। इस तरह का संगठन अन्य संस्थाओं में कम मिलेगा। महासभा के नवनिर्वाचित अध्यक्ष, अन्य कार्यकर्ता यहां बैठे हुए हैं। तेरापंथ संगठन को देखकर दूसरे संप्रदाय के बड़े-बड़े नेता प्रभावित हो रहे हैं। एक आचार्य के नेतृत्व में लाखों आदमी चल रहे हैं। एक अपरिग्रही व्यक्ति द्वारा इतने बड़े संगठन का संचालन हो, यह विचारने की चीज है। तेरापंथ संघ हमारे पूर्वाचार्यों की महान् देन है।

द्विशताब्दी के अवसर पर महासभा पर बड़ा उत्तरदायित्व आ रहा है। समाज बहुत बड़ा है। समाज में चिंतक, पढ़े-लिखे लोग व कर्मठ कार्यकर्ताओं की कमी नहीं है, परन्तु आवश्यकता संयोजन करने वालों की है। आज संयोजक संयोजना बराबर करता रहे तो बहुत काम हो सकता है। समाज के व्यक्तियों को किस प्रकार अधिक से अधिक उपयोग में लाया जाए—यह विचारने की चीज है। इसके लिये समाज के कार्यकर्ताओं में समन्वय की भावना का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिए क्रियात्मक रूप देना होगा।

अपना संघ और संगठन ऐसा है कि इसमें दलगत नीति उठने की संभावना नहीं है। इसका कारण यही है कि काम करने वाला काम करता है। गलत काम करने पर उस पर रोक लग सकती है। रोक लगने पर भी यदि वह परवाह नहीं करता है तो वह स्वयं गिर जायेगा। समाज में दलगत नीति का प्रवेश नहीं होना चाहिये। अगर ऐसा हो तो उसे क्रियात्मक तरीकों से दूर कर देना चाहिये।

दूसरा, संघ के विकास में जो सहयोग देना चाहे उनका उपयोग विश्वासपूर्ण वातावरण में होना चाहिये। इससे कार्य करने वाले को प्रोत्साहन मिल सकेगा। समाज का व्यक्ति काम करने वाला हो तो उसके मन में किसी प्रकार की उलझन नहीं रहनी चाहिये। तीसरा, साहित्य का काम भी बड़ा आवश्यक है। महासभा को इस क्षेत्र में कदम उठाना चाहिये। इससे महासभा की प्रतिष्ठा ऊंची उठेगी और समाज के युवकों को साहित्यसेवी बनाने का अवसर मिलेगा। वर्तमान में दर्शन व धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति समाज में आपको बहुत कम मिलेंगे।

आगम का काम भी किसी भी दृष्टि से गौण नहीं समझना चाहिये। यह भी जांची वस्तु है। शासन के इतिहास का प्रयत्न करना भी आवश्यक है। हमारा निर्देशन उचित सीमा तक ही रह सकेगा। द्विशताब्दी महोत्सव के लिये स्थान आदि का भी हमें चिंतन करना है। शिक्षण, संगठन आदि प्रवृत्तियों के काम भी मौलिक हैं। कार्यकर्ता काफी विकास करते आ रहे हैं। मैं कार्यकर्ताओं से आशा करूंगा कि वे ऐक्य और समन्वय को प्रोत्साहन दें, तभी हमारा काम निरन्तर आगे बढ़ेगा। कार्यकर्ताओं में परस्पर में स्पष्टता रहे, इससे किसी प्रकार की उलझन पैदा नहीं होगी।

वर्तमान सभापतिजी (अध्यक्ष) ने जो जिम्मेवारी ली है, आशा है उसे वे अवश्य निभायेंगे। आज हमारा कार्य इतना विस्तृत हो गया है कि हम पर केवल तेरापंथियों की ही नहीं, प्रत्युत समस्त जैनों की जिम्मेवारी आ गई है। समय ऐसा आ रहा है कि अन्य धर्म भी हमारी प्रतीक्षा करेंगे। कार्यकर्तागण अणुव्रत आंदोलन को न भूलें। अपने जीवन में इसे व्याप्त कर अधिक से अधिक इसका प्रचार किस प्रकार हो, इसका प्रयत्न करें। अणुव्रत समिति और महासभा के उलझन की कोई बात नहीं दीखती परन्तु कार्यकर्ताओं में उलझन की भावना कैसे आ जाती है। महासभा तेरापंथियों का प्रतिनिधित्व करती है परन्तु अणुव्रत केवल तेरापंथ तक ही सीमित नहीं है। वह समस्त जैनों तक ही नहीं बल्कि सभी धर्मों व सभी वर्गों में भी व्याप्त है। हमें उसे तेरापंथ के दायरे में नहीं रखकर अलग रखकर काम करना चाहिये। अणुव्रती कार्यकर्ताओं को काम करने का बहुत बड़ा क्षेत्र है। अलग-अलग संस्थाओं के कार्यकर्ता परस्पर में समन्वय व एकता की दृष्टि से काम करें।' ❑

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

स्व. बादरमलजी बाफना

Reid & Taylor Exclusive Store

Mohan Moti

568, 3rd Stage, 4th Block
80 Feet Road, Basaveshwarnagar, **BANGALORE** 560079
Ph. : + 91 8023224688

4, Kamanhalli Main Road, 3rd Block
HRBR Layout, BANGALORE 560043

MOHAN MOTI ANNEXE

28, Panchratna Plaza, (Opp. Poonam Plaza)
D.S. Lane, Chickpet, BANGALORE-53
Ph. : + 91 8022373003

MOHAN MOTI DISTRIBUTORS

12, Poonam Plaza
No. 5, D.S. Lane, Chickpet, **BANGALORE-53**
Ph. : + 91 8022255680
E-mohanmoti@gmail.com / www.mohanmoti.co.cc

M.B. Bafna 9341268415, **Mahendra M. Bafna** 9342232270

जैन भारती, फरवरी , 2013 ■ प्रेषण दिनांक 28 जनवरी, 2013
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।